ॐ

शुद्धात्मने नमः

बहिनश्री की साधना और वाणी

(बहिनश्री चम्पाबेन अभिनन्दन ग्रन्थ से चयनित
कितने ही विषय तथा तदुपरान्त तात्त्विक प्रश्नों के उत्तर)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2077	2547	2020

—: प्रकाशन :—

अष्टाह्निका महापर्व
कार्तिक शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा
के पावन अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर, अलीगढ़।

दो शब्द

परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्तरत्न प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के स्वानुभवविभूषित जीवन का परिचय करानेवाला ग्रन्थ—'बहिनश्री की साधना और वाणी' प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

यह तो सर्व विदित है कि पूज्य बहिनश्री को लघुवय से ही सुख प्राप्ति की तीव्र लगन, वैराग्यवन्त जीवन और गुणीजनों के प्रति अहोभाव था। सर्व प्रथम मात्र 15 वर्ष की उम्र में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम प्रवचन श्रवण से उनकी परिणति में आश्चर्यकारी मोड़ आया और पूर्व भव की सुषुप्त संस्कार पुनः जागृत हो उठे। सम्यक्त्व की प्राप्ति इसी भव में और शीघ्र ही करनी, यह मात्र विकल्पों तक नहीं, अपितु प्रयोगपद्धति बन गया। जो उनके जीवन से भलीभाँति परिलक्षित होता है। जहाँ चाहा हो, वहाँ राह होती ही है—इस लोकोक्ति अनुसार मात्र १९ वर्ष की लघुवय में भवान्तरकारी सम्यक्त्व को उपलब्ध कर पूज्य बहिनश्री ने अपना जीवन धन्य किया। साधक धर्मात्मा का पूर्ववर्ती जीवन भी आत्मसाधना का प्रेरक होता है। तदर्थ बहिनश्री के द्वारा सम्यक्त्व प्राप्ति से पूर्व और पश्चात् भी अपने परिजनों को लिखे गये पत्र विशेषरूप से अनुप्रेक्षणीय हैं।

बहिनश्री के सम्यक्त्व की उपलब्धि से प्रमुदित पूज्य गुरुदेव ने पाँच लिखित प्रश्न इस आदेश के साथ भिजवाये थे कि इनका लिखित में उत्तर लिखकर दें। हमारे सौभाग्य से उन प्रश्नोत्तरों का समावेश भी इस ग्रन्थ में किया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ की विषयवस्तु का परिचय सोनगढ़ ट्रस्ट की ओर से लिखित प्रकाशकीय में उपलब्ध है। इसलिए इस सन्दर्भ में विशेष कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

हमारा सौभाग्य है कि आज बहिनश्री के आत्मसाधना के प्रेरक पुष्प के रूप में हमें बहिनश्री के वचनामृत, बहिनश्री की साधना और वाणी, बहिनश्री का ज्ञानवैभव, स्वानुभूति दर्शन इत्यादि ग्रन्थों के रूप में तथा उनके द्वारा की गयी तत्त्वचर्चा के ओडियो और वीडियो सहज उपलब्ध है जो हमें आत्महित के प्रेरक है। इन चर्चाओं के कुछ प्रकाशन भी उपलब्ध हैं जो आत्मार्थीजनों के बहुत लाभदायक है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया हैं। जिससे हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इस ग्रन्थ के स्वाध्याय का लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

यह ग्रन्थ www.vitragvani.com पर उपलब्ध है।

सभी मुमुक्षु इस ग्रन्थ का स्वाध्याय कर निज आत्महित साधे, यही भावना है —

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
मुम्बई

प्रकाशकीय निवेदन

(प्रथमावृत्ति)

पावन मधुर अद्‌भुत अहो! गुरु वदन से अमृत झरे
सुनने मिले सद्‌भाग्य से नित्य अहो चिद्‌रस भरे
गुरु कहान तारणहार से आत्मार्थी भवसागर तिरे,
भवभव रहो हम आत्मा को सान्निध्य ऐसे सन्त के

पावन मधुर और अद्‌भुत अध्यात्मामृत वर्षों तक बरसानेवाले भवोदधि तारणहार परमोपकारी पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगलमयी जन्म शताब्दी वर्ष के (विक्रम संवत 2045, वैशाख शुक्ल 2 से विक्रम संवत् 2046, वैशाख शुक्ल 2) आनन्दकारी महोत्सव के सुअवसर पर 'बहिनश्री की साधना और वाणी' नाम का यह अभिनव प्रकाशन आत्मार्थी जिज्ञासुओं के करकमल में प्रस्तुत करते हुए आनन्द अनुभव करते हैं।

जिनकी स्वानुभव सुधाभीनी पवित्र आध्यात्मिक साधना और चैतन्यस्पर्शी अनुभव वाणी के लिये पूज्य गुरुदेव को अन्तर में बहुत ही अहोभाव था तथा आत्मार्थी जगत के हित के लिये जिनकी प्रसिद्धि गुरुदेव को इष्ट थी—इष्ट थी इतना ही नहीं परन्तु उनकी पावन परिणति की महिमा कथन के लिये स्वयं को शब्द कम पड़ते थे—ऐसे धन्य अवतार प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के 75वें वर्ष के 'अमृत जन्मोत्सव' (भाद्र कृष्ण दूज, विक्रम संवत 2044) के सुअवसर पर 'बहिनश्री चम्पाबेन अभिनन्दन ग्रन्थ' नाम का जो अति मनोज्ञ प्रकाशन (प्रतियाँ 2000) श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित हुआ था और जो थोड़े ही दिनों में समाप्त हो गया, उसकी माँग बढ़ने से दूसरी आवृत्ति (प्रति 1500) प्रकाशित हुई।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ की दूसरी आवृत्ति भी अल्प समय में समाप्त होने को

आयी है। तद् अन्तर्गत बहिनश्री ने लघुवय में अपने बड़े बन्धु श्री हिम्मतभाई इत्यादि स्वजनों के साथ किया गया पत्र व्यवहार इत्यादि की, आत्मार्थी जीवों को वह बहुत लाभदायक होने से, मुमुक्षु समाज में से बहुत माँग आती है। उस माँग को लक्ष्य में लेकर 'बहिनश्री की साधना और वाणी' नाम का यह अभिनव संकलन प्रकाशित किया जा रहा है।

'बहिनश्री की साधना और वाणी' नामक इस नूतन प्रकाशन में, (1) जन्मधाम बढ़वाण में पूज्य बहिनश्री के बड़े बन्धु आदरणीय पण्डित श्री हिम्मतभाई जेठालाल शाह ने दिया गया प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का 'संक्षिप्त जीवन परिचय'; (2) पूज्य बहिनश्री ने लघुवय में अपने बन्धु श्री हिम्मतभाई इत्यादि स्वजनों के साथ किया गया पत्रव्यवहार; (3) पूज्य गुरुदेवश्री ने पूछे गये कितने ही प्रश्नों के पूज्य बहिनश्री ने दिये उत्तर; (4) पूज्य बहिनश्री के शास्त्रोपम गम्भीर तथापि सरल ऐसे, थोड़े वचनामृतरूपी 'अनुभवी की अमृतवाणी'; (5) बहिनश्री के वचनामृत के सम्बन्ध में 'प्रमोदपूर्ण अभिव्यक्ति'; (6) बहिनश्री चम्पाबेन सम्बन्धी 'गुरुदेवश्री के हृदयोद्गार' और (7) पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के स्वानुभवमुद्रित और भक्तिरसप्लावित हृदय में से प्रवाहित कितनी ही स्तुति पद–ऐसे सात विविध विभाग का संकलन किया गया है।

(तदुपरान्त स्वानुभवविभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के आदर्श जीवन में से कितनी ही 'चयनित विगत' तथा पूज्य गुरुदेवश्री तथा बहिनश्री के अनुपम उपकारों के अनेकविध 'मधुर संस्मरण' इत्यादि रसमय बातें जानने की जिन्हें भावना हो, उन्हें 'बहिनश्री चम्पाबेन अभिनन्दन ग्रन्थ' पढ़ने का नम्र अनुरोध है।)

इस नवीन संकलन के तृतीय विभाग में जो 'पूज्य गुरुदेव ने पूछे हुए कितने ही प्रश्न और बहिनश्री ने दिये हुए उनके उत्तर'—यह पहली ही बार प्रकाशित हो रहे हैं। वैसे तो पूज्य गुरुदेव शुरुआत के वर्षों में बहिनश्री चम्पाबेन अनुभवसम्बन्धी

और शास्त्र सम्बन्धी किसी-किसी समय प्रश्न पूछते थे परन्तु यह पाँच प्रश्न और उनके उत्तर लिखित होने से, मुमुक्षु पाठक को लाभ का कारण जानकर वह यहाँ संकलित किये गये हैं।

'बहिनश्री की साधना और वाणी' नामक यह पुस्तक आत्मार्थी जीवों को बहुत उपयोगी है। आत्महितेच्छु जीवों को यह पुस्तक घर में अवश्य बसानेयोग्य तथा आत्मलक्ष्य से इसका स्वाध्याय करनेयोग्य है।

प्रकाशन के इस मंगल प्रसंग पर, पूज्य गुरुदेव और पूज्य बहिनश्री के पुनीत उपकार प्रताप से, और आत्मार्थी पाठकों को आत्मानुभूति का सच्चा पुरुषार्थ आ जाये—ऐसी प्रशस्त भावना भाते हैं।

इस पुस्तक के मुद्रण, गेट-अप इत्यादि कार्य में श्री अजित मुद्रणालय (सोनगढ़) तथा श्री बाहुबली प्रिन्टर्स (मुम्बई) का अच्छा सहकार प्राप्त हुआ है, जिससे यह प्रकाशन शीघ्रता से तथा सुन्दर रीति से तैयार हो सका है। तदर्थ उनका आधार व्यक्त करते हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये जिन महानुभावों की ओर से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई, उनका भी आभार मानते हैं। प्राप्त रकमों की नोंध पुस्तक के अन्त में दी गयी है।

अन्त में, हमें आशा है कि स्वानुभवपरिणत सत्पुरुषों के प्रति जिन्होंने अपना आत्मार्थ भीना हृदय समर्पित किया है, ऐसे जिज्ञासु जीव, इस 'बहिनश्री की साधना और वाणी' के तलस्पर्शी अध्ययन द्वारा साधना की सच्ची दिशा प्राप्त कर, निज आत्मार्थ पुष्ट कर, अपने साधनापथ को उज्ज्वल तथा सुधास्वादु बनायेंगे।

वि.सं. 2046, वैशाख शुक्ल 2
(कहानगुरु-जन्मशताब्दी समापन)
दिनांक - 26-4-1990

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़-364250 (सौराष्ट्र)

विदेहीनाथ श्री सीमन्धर भगवान

परम पूज्य अध्यात्ममूर्ति सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

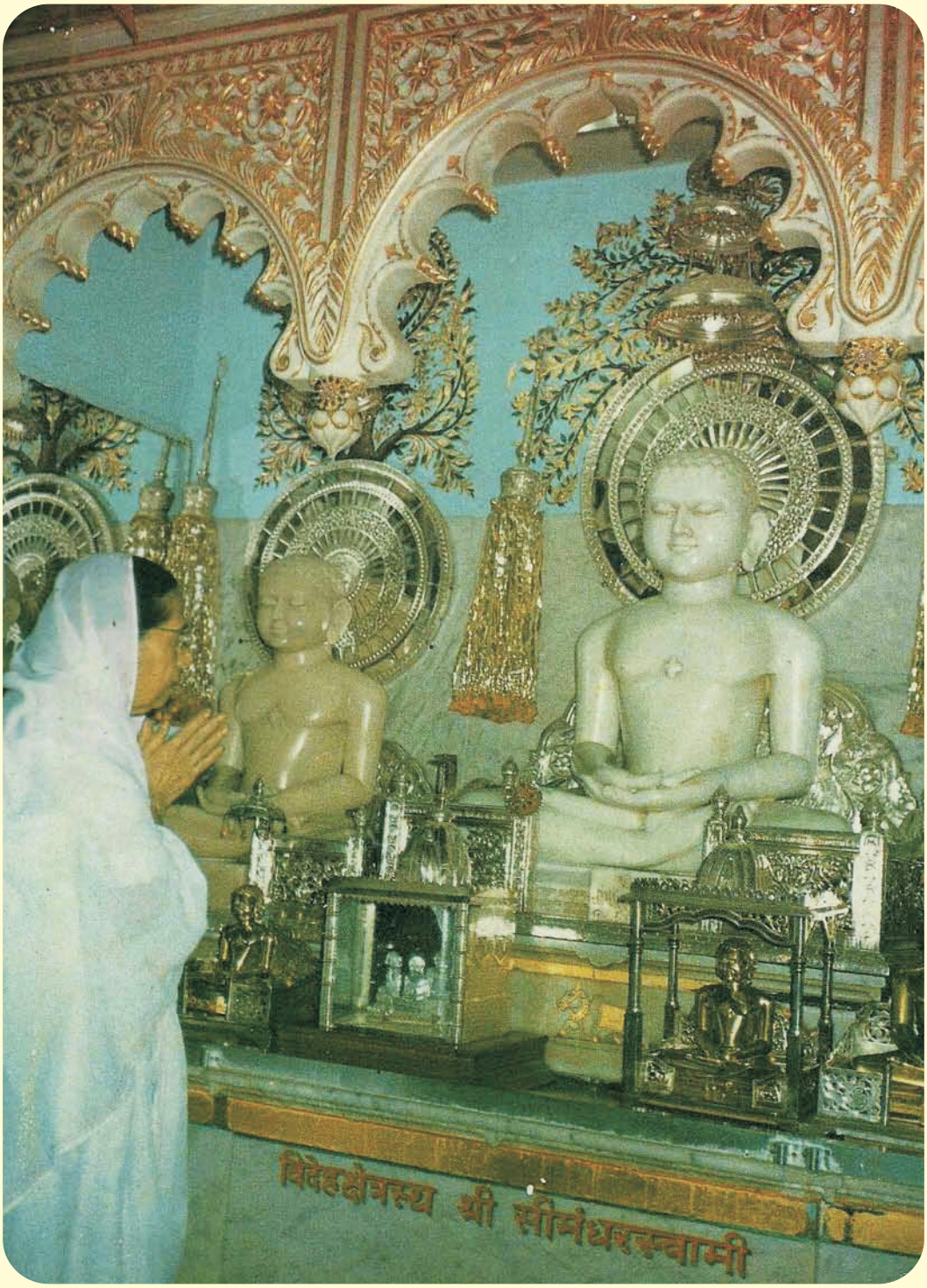
विदेहक्षेत्रस्थ श्री सीमंधरस्वामी

परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

[पूज्य बहिनश्री चंपाबेन के हस्ताक्षर में]

હે પરમ કૃપાળુ ગુરુદેવ! આપના અપાર ગુણોનું
શું વર્ણન કરું? આપના અનંત ઉપકારોનું શું
વર્ણન કરું? આ આત્માના દરેક પર્યાયમાં આપનો
અસીમ ઉપકાર છે. આપે આ ભારતના જીવોને
જાગ્રત કર્યા છે, અંતરમાં આત્મા તરફ વાળ્યા છે.

હે ગુરુદેવ! આપના શુદ્ધાત્મામાં પ્રગટેલા
શુદ્ધ પર્યાયોના—જ્ઞાન-વિરક્તિ આદિની છાયા આપના
અંતરમાં તેમજ આપની મુદ્રામાં છવાઈ ગઈ હતી.

હે ગુરુદેવ! આપના અંતરમાં ચૈતન્યરત્નાકર-
સ્પર્શી સાતિશય શ્રુતજ્ઞાનની ચમત્કારી
સમ્યક્ પર્યાયોના ઝગમગાતા જ્ઞાન-દીવડા પ્રકાશિત
રહ્યા હતા; આપની સાતિશય વાણી ચૈતન્યદેવનો
અદ્ભુત ચમત્કાર દેખાડનારી હતી.

હે ગુરુદેવ! આપનું ચૈતન્યદ્રવ્ય મંગળસ્વરૂપ
અને મંગળતા પ્રગટાવનાર તથા અલૌકિક હતું, દિવ્ય
હતું.

હે ગુરુદેવ! આપે એકાકી, નિસ્પૃહ અને નીડરપણે અંતરમાં પુરુષાર્થ કરી આત્મરત્નને પ્રગટ કરી ભારતના જીવોને તે સત્યનું માર્ગે નિઃસ્પૃહપણે અને નીડરપણે આપના પરાક્રમથી વાળ્યા છે; શાસ્ત્રોનાં ને આત્મદેવનાં ઊંડાં સૂક્ષ્મ ગૂઢ પ્રકાશ્યાં છે; ઉપાદાન-નિમિત્ત, નિશ્ચય-વ્યવહાર, દ્રવ્યદૃષ્ટિ, જ્ઞાતા, કર્તા, અકર્તા, સ્વાનુભૂતિના નિર્વિકલ્પ દશા વગેરે ચૈતન્યના અદ્ભુતતા વાણી દ્વારા પ્રકાશ કરી લાખો જીવોને અંતરદૃષ્ટિનો માર્ગ બતાવ્યો છે, તે પંથે વાળ્યા છે. આપ ભારતના મહાન વિભૂતિ અને અમોલ રત્ન હતા.

હે ગુરુદેવ! આપના ઉપકારોનું શું વર્ણન થાય? તે તો હૃદયપટમાં કોતરાઈ ગયા છે. આ દાસના આત્મા ઉપર આપનો અનંત અનંત ઉપકાર છે. આપની સેવા-ભક્તિ અંતરમાં વસી રહો. આપના ચરણ કમળમાં આ દાસના વારંવાર પરમભક્તિથી વંદન નમસ્કાર હો.

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्‌गार)

हे परमकृपालु गुरुदेव! आपके अपार गुणों का क्या वर्णन करूँ! आपके अनन्त उपकारों का क्या वर्णन करूँ! इस आत्मा की प्रत्येक पर्याय में आपका असीम उपकार है। आपने इस भारत के जीवों को जागृत किया है, अन्तर में आत्मोन्मुख किया है।

हे गुरुदेव! आपके शुद्धात्मा में प्रगट हुई शुद्ध पर्यायों की—ज्ञान-विरक्ति आदि की—छाया आपके अन्तर में तथा आपकी मुद्रा में छा गयी थी।

हे गुरुदेव! आपके अन्तर में चैतन्यरत्नाकर-स्पर्शी सातिशय श्रुतज्ञान की चमत्कारी सम्यक् पर्यायों के जगमगाते ज्ञानदीपक प्रकाशित हो रहे हैं; आपकी सातिशय वाणी चैतन्यदेव का अद्‌भुत चमत्कार बतलानेवाली थी।

हे गुरुदेव! आपका चैतन्यद्रव्य मंगलस्वरूप एवं मांगलिकता प्रगट करनेवाला तथा अलौकिक था, दिव्य था।

हे गुरुदेव! आपने एकाकी, निस्पृहता एवम् निर्भीकता से अन्तर में पुरुषार्थ कर, आत्मरत्न को प्रगट करके, भारत के जीवों को उस सम्यक् मार्ग में निस्पृहता एवम् निर्भीकतापूर्वक अपने पराक्रम से लगाया है, शास्त्रों के तथा आत्मदेव के गम्भीर सूक्ष्म हार्द प्रकाशित किये हैं; उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, द्रव्यदृष्टि, ज्ञाता, कर्त्ता, अकर्त्ता, स्वानुभूति की निर्विकल्पदशा आदि चैतन्य की अद्‌भुतता का वाणी द्वारा प्रकाश करके लाखों जीवों को अन्तर्दृष्टि का मार्ग बतलाया है, उस पन्थ पर लगाया है। आप भारत की महान विभूति एवम् अजोड़ रत्न थे।

हे गुरुदेव! आपके उपकारों का क्या वर्णन हो सकता है! वे तो हृदयपट पर अंकित हो गये हैं। इस दास के आत्मा पर आपका अनन्त उपकार है। आपकी सेवा-भक्ति अंतर में बसी रहे। आपके चरणकमल में इस दास के बारम्बार परम भक्ति से नमस्कार हो।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन

ફાગણ વદ દશમના માંગલિક દિવસે થયેલી
સ્વાનુભૂતિ સંબંધી નોંધ

(પોતાના હસ્તાક્ષરમાં)

વાંકાનેર, ૧૯૯૯ ફાગણ વદ દશમનો
અપૂર્વ દિવસ

ચૈત્ર માસે
([illegible])

સ્વ સ્વરૂપનું લક્ષ આવતાં ફાગણ જ્ઞાતાદ્રષ્ટાની વૃદ્ધિ હતા. વદ દશમને સોમવારે બપોરે તે સ્વરૂપનું ધ્યાન થતાં તેમાં એકાગ્ર થતાં તે સ્વરૂપમાં ઊંડી તન્મયતાએ આવી ઉપયોગ પર લક્ષ્યથી છૂટી પડી પોતાના સ્વ સ્વરૂપમાં સ્થિર થઈ ચૈતન્ય ભગવાન તે સ્વરૂપને અનુભવતા હતા. પોતાના નિર્વિકલ્પ સહજ સ્વરૂપમાં ખેલી રહ્યા હતા, રમી રહ્યા હતા. અનુપમ ને અદ્ભુત એવા આત્મદ્રવ્યની મહિમા કોઈ ઓર જ છે. ચૈતન્યદેવ આનંદ તરંગોમાં ડોલતા હતા.

અહો!! અનંતકાળથી છૂપાએલા
આત્મ ભગવાન પ્રગટ થયા. તેનો
છૂપાએલો એવો અનુપમ અમૃત
સ્વાદ લીધો, અનુભવ્યો.
તે હે શ્રી સદ્ગુરુદેવ આપનોજ
પ્રતાપ છે.
અપૂર્વ આત્મસ્વરૂપ પ્રગટ્યું તે
પરમ કૃપાળુ સદ્ગુરુદેવનો જ
પ્રતાપ છે.

ભારતખંડમાં અપૂર્વ મુક્તિમાર્ગ
પ્રકાશનાર પરમ ઉપકારી
ગુરુદેવને નમસ્કાર

પૂજ્ય ભગવતી બહેનશ્રી ચંપાબેનની
નિજાનંદવેદન સંબંધી નોંધ
(પોતાના હસ્તાક્ષરમાં)

૧૯૮૯

વાંકાનેર, આનંદનો દિવસ

ફાગણ વદ દશમીને સોમવારે બપોરે સામાયકમાં નિજ સ્વરૂપ અનુભવ્યું. અનંતકાળ થી નહિ સમજાયેલું સ્વરૂપ સમજાયું. આનંદ સાગર ઉછળી રહ્યા હતા. તે સ્વરૂપ આશ્ચર્યકારી અને અદ્ભુત છે.

પરમ ઉપકારી પરમ
પ્રતાપી સદ્ગુરુદેવને
નમસ્કાર.

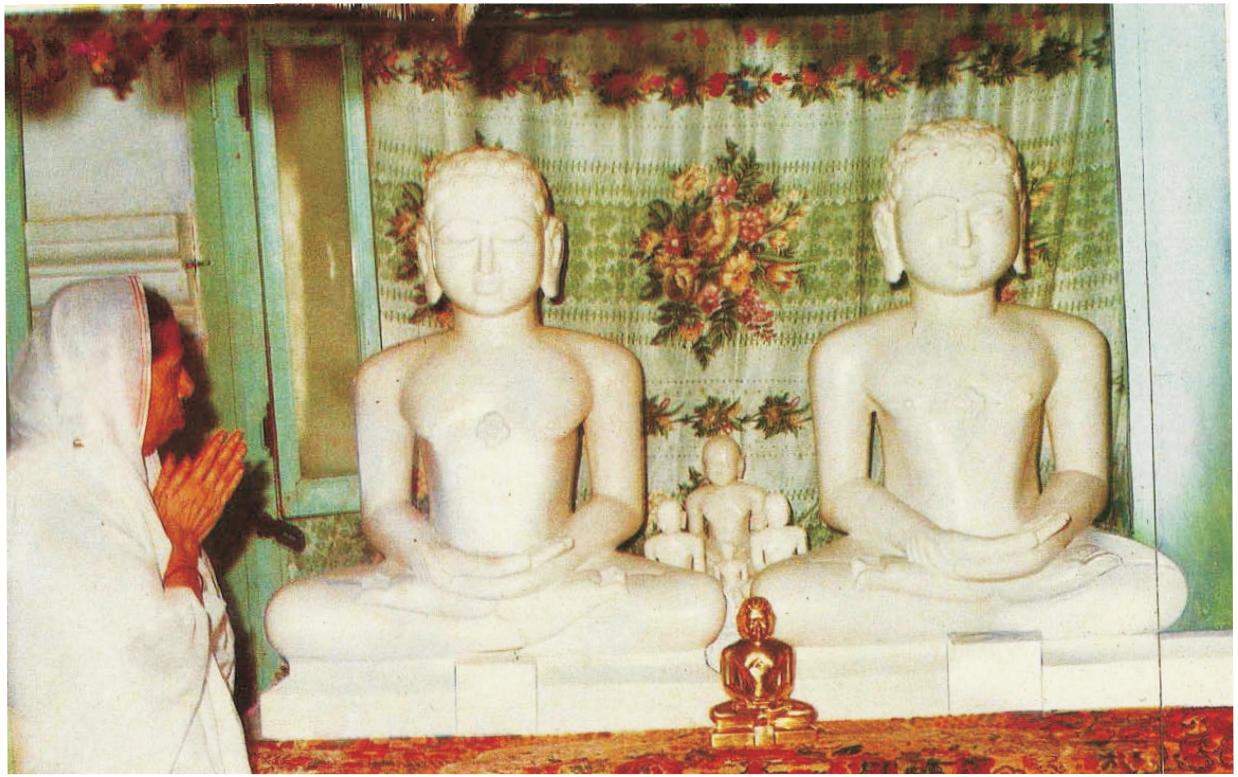

स्वरूपे डूबेला नमन तमने ओ जिनवरा!

बहिनश्री के पिताश्री जेठालालभाई मोतीचन्द शाह

बहिनश्री के ज्येष्ठ बन्धु श्री व्रजलालभाई

(जिन्हें सोनगढ़ में तथा गाँव-गाँव में जिनमन्दिर
तथा धर्मायतन बनवाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ)

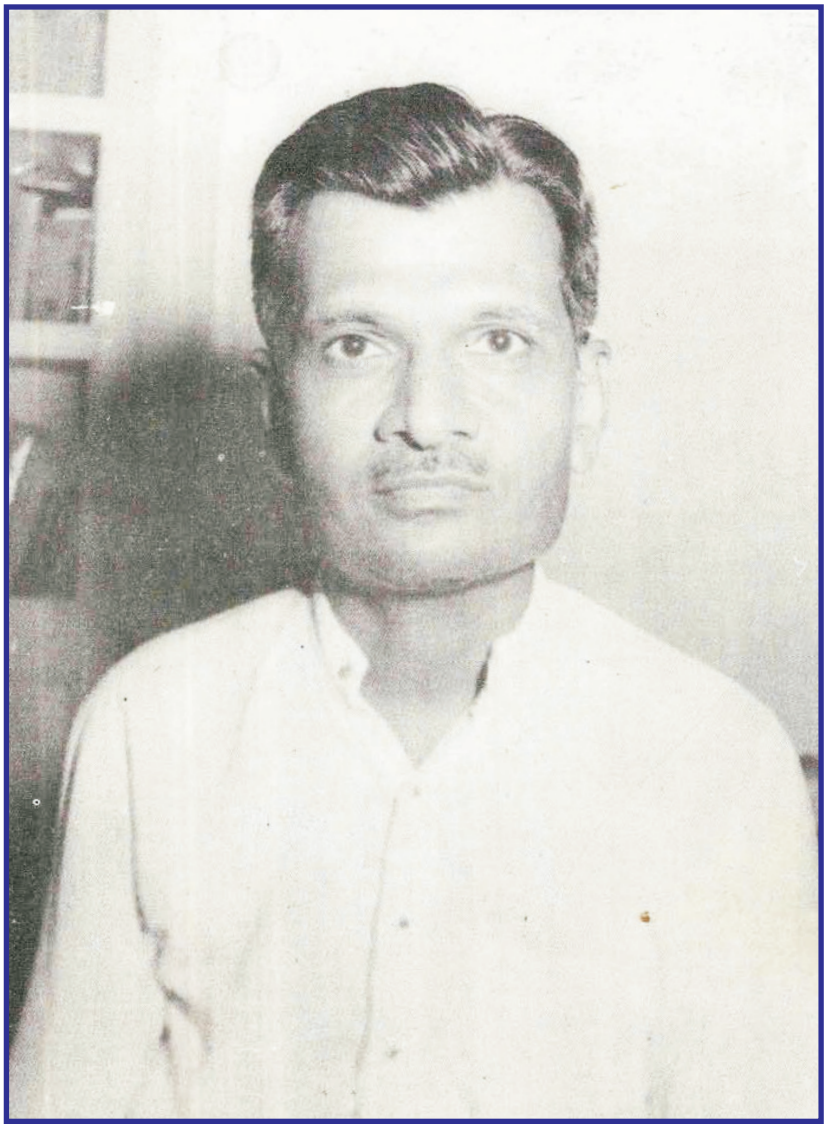

बहिनश्री के बड़े बन्धु श्री हिम्मतलालभाई

(जिन्होंने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य के परम पंच परमागमों
का अति भक्तिपूर्वक भाववाही अनुवाद करने का सौभाग्य पाया।)

पूज्य बहिनश्री के कुटुम्बीजन

बहिनश्री की साधना और वाणी की

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
1.	संक्षिप्त जीवनपरिचय	1–25
2.	पत्र व्यवहार	27
3.	पत्र व्यवहार	30–93
4.	तात्त्विक प्रश्नों के उत्तर	94–104
5.	अपनी अन्तरंग दशा	105–106
6.	बहिनश्री के हृदय में गुरु महिमा	107
7.	पत्र व्यवहार	119–131
8.	अनुभवी की अमृत वाणी	134–175
9.	प्रमोदपूर्ण अभिव्यक्ति	176–192
10.	गुरुदेव के हृदयोद्‌गार	193–214
11.	देव–गुरु–स्तुति	215–247

काव्यानुक्रमणिका

काव्य	पृष्ठ
सखी देख्युं कौतुक आज	26
बहु पुण्य केरा पुंजथी	28
बहु पुण्य पुंज प्रसंग से	29
दूर कां प्रभु ! दौड़ तू	56
कंचनवर्णो न रे	57

काव्य	पृष्ठ
तीन काव्य पद	57
आज मंगल मंदिर द्वार खुल्या	58
मंगलकारी 'तेज'	95
भव्यो न दिल मां दीवडा प्रगटावनार	108
आवी श्रामणनी बीजली	110
कहानगुरु महिमा	132
कुंवर ने खम्मा खम्मा करती	133
* जन्म वधावना*	177
स्वर्णपुरी में स्वर्णमयी वधामणां रे	217
मारा मन्दिरीया मां त्रिशलानन्द पधारिया रे	221
स्वर्णपुरी मां स्वर्णरवि आज (मंगळमाल शोभी रहिया)	223
मारा जिनालया में जिनेन्द्र वृन्द पधार्या रे	225
त्रिभुवन तारक ने रत्ने वधाओ रे	227
श्री महापद्मजिन- स्तवन	230
आजे गुरुजी मारा स्वर्णे पधार्या रे	231
गुरुजी नी जोड जगे नहीं चढ़े रे लाल	235
विदेहवासी कहान गुरु भरते पधार्या रे	239
कहान गुरु विराजो मनमन्दिरिये	240
गुरुराज पधार्या अम आंगने रे लाल	241
स्वर्णभानु भरते उग्यो रे	242
आज भरतभूमि मा सोना-सूरज उग्यो रे	245

ॐ

नमः श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यः।

नमः श्रीसद्गुरुदेवाय॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का
संक्षिप्त जीवन परिचय

इस विभाग में, विक्रम संवत् 2040 में, प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की 71 वीं जन्म-जयन्ती के प्रसङ्ग पर, रक्षाबन्धन पर्व के दिन आयोजित 'कहान एक्सप्रेस' स्पेशल ट्रेन द्वारा पूज्य भगवती माता बहिनश्री के साथ उनके जन्मधाम की यात्रा के शुभ अवसर पर, बहिनश्री के बड़े बन्धु आदरणीय विद्वत्रत्न पण्डितश्री हिमतलालभाई जे. शाह द्वारा प्रस्तुत संक्षिप्त जीवन परिचय दिया गया है। इसमें वर्णित बहिनश्री की बाल्यावस्था के — साधना-अवस्था के—मधुर संस्मरणों को, अपने जीवन में आत्महित का निमित्त हो उस प्रकार, उपयोगी बनाने की मुमुक्षुओं को प्रेरणा है।

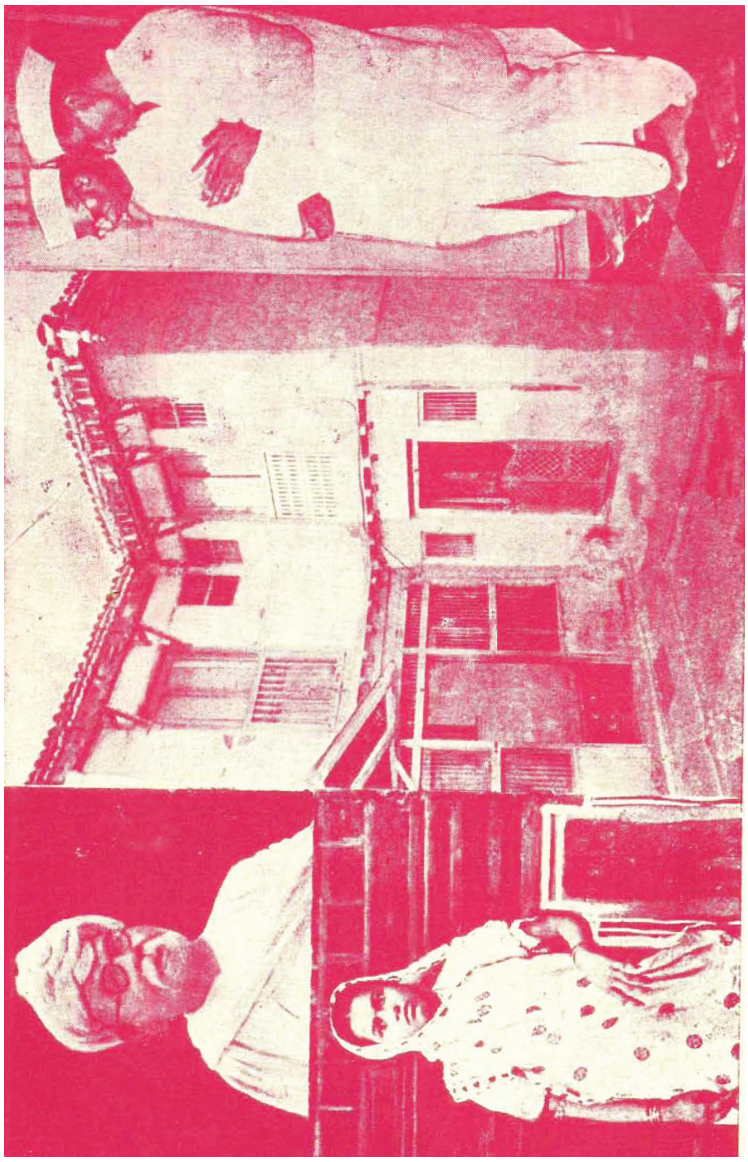

पूज्य बहिनश्री के जन्मधाम (वढवाण) में पूज्य पिताश्री जेठालालभाई,
पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन तथा दोनों भाई श्री व्रजलालभाई और श्री हिम्मतभाई

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का जन्म वढ़वाण शहर में, विक्रम संवत् 1970, भाद्रपद कृष्ण दूज, शुक्रवार के दिन महालक्ष्मी के मन्दिर के समीप पीपलवाले घर में हुआ था।

पूज्य बहिनश्री की उम्र साढ़े तीन वर्ष की थी, तब हमारी मातुश्री का स्वर्गवास हुआ। उस समय मेरी उम्र साढ़े नौ वर्ष की थी। मातुश्री का स्वर्गवास होने से पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन, करांची में बड़ी बहिन के (समरतबेन के) वहाँ रहे। पूज्य पिताजी, बड़े भाईश्री वजुभाई और मैं — हम तीनों वढ़वाण रहे। पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन लगभग दस-ग्यारह वर्ष करांची में रहीं, शाला का अभ्यास भी उन्होंने वहीं किया। बुद्धिशाली होने से शाला के अभ्यास में वे प्राय: प्रथम नम्बर रखती थीं।

પૂજ્ય બહેનશ્રીના બનેવી શ્રી મગનલાલભાઈ તથા મોટા બહેન શ્રી સમરતબેન

वे प्रथम से ही प्रकृति से सौम्य, कोमल, सौजन्यपूर्ण, शर्मिली, वैरागी, और मितभाषी तथा मिष्टभाषी थीं। बोले बहुत थोड़ा, बुलावे तब बहुत ही थोड़ा मुश्किल से बोलें। बड़ी बहिन, पड़ोसी के यहाँ कोई वस्तु लेने को भेजे कि 'चम्पा! चाकू ले आ', तो वे उनके यहाँ जाकर धीमी मधुरवाणी से कहे — 'चाकू दो न!' पड़ोसी को यह सुनना ऐसा मीठा लगता कि फिर से बुलवाने

के लिये वे पूछते — 'चम्पा! क्या लेने आयी हो? समझ में नहीं आया।' 'चाकू दो न!' ऐसा कहे, तब वह फिर से कहे — 'अभी कुछ समझ में नहीं आया।' तब बहिनश्री फिर से कहे — 'चाकू दो न' — इस प्रकार उनकी मधुर भाषा सुनने के लिये बारम्बार बुलवाते।

वे स्वभाव से नरम भी इतनी ही थीं। मंजिल के नीचे पानी का सामूहिक नल था। वहाँ पानी भरने जाये तो वे एक ओर खड़ी रहें, उनका नम्बर आवे तो भी स्वयं भीड़ के अन्दर जाकर भर नहीं सकें। फिर ऐसी छाप पड़ गयी कि दूसरी बहनें जो वहाँ हों वे, कहे — 'चम्पा को पानी भर लेने दो! यह तो एक ओर खड़ी ही रहेगी, पानी नहीं भर सकेगी।' बहिनश्री पहले से ही ऐसी नरम स्वभाव की थी, ऐसे बहुत सद्गुण उनमें थे।

बहिनश्री को बालपन से ही सद्गुणी व्यक्तियों के प्रति प्रेम था, उनमें भी सतियों का तो बहुत आकर्षण... 'सती मण्डल' नामक पुस्तक उन्हें ईनाम में प्राप्त हुई थी; उसमें से वे सतियों का चरित्र पढ़तीं तथा कितनी ही सतियों के चरित्र-सम्बन्धी रास-गरबा वे मोहल्ले के चौगान में गवातीं और अन्य बालिकायें झेलती। दूसरी भी नैतिक पुस्तकें, सदाचरण की पुस्तकें वे पढ़तीं। ऐसी अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने का उन्हें पहले से ही प्रेम था। उन्होंने धार्मिक अभ्यास घर में बैठे-बैठे पढ़कर अथवा किसी बहिन के साथ सामायिक, प्रतिक्रमण इत्यादि करतीं, उस दौरान किया था। धर्मस्थानक वहाँ था, परन्तु बहुत दूर। वहाँ बाहर से आये हुए किसी पण्डित का व्याख्यान चलता, परन्तु वह उपदेश सुनने जाने का तो कभी बनता। किसी समय घर में दोपहर में सामायिक करे और रात्रि में प्रतिक्रमण करे।

शाला का अभ्यास छोड़ने के पश्चात् तो वे दोपहर में घर में सामायिक बहुत बार करतीं; त्याग-वैराग्य की क्रियाएँ भी करतीं। सामायिक का पाठ सीखा था और प्रतिक्रमण भी मुखाग्र किया था। तदुपरान्त थोकड़ा में नवतत्त्व, छह काय के बोल, दण्डक, गति -आगति, गुणस्थान — ये सब यथाशक्ति विचारपूर्वक मुखपाठ किया था। पुच्छिस्सुणं (प्रत्याख्यान), भक्तामर तथा कल्याणमन्दिर आदि स्तोत्र कण्ठस्थ किये थे। दूसरा धार्मिक वांचन भी करती थीं। बेनश्री कहती — 'वहाँ पण्डित लालन की एक पुस्तक थी, उसमें ऐसा आता कि आँख बन्द करो, कान बन्द करो, अन्दर जो एक विचारक तत्त्व है, वह आत्मा है।' यह बात मुझे रुचती। वह विचारक तत्त्व कौन है? — यह समझने के लिये मैं प्रयत्न करती। इस प्रकार आत्मा समझने की धार्मिक लगन उन्हें पहले से ही थी।

उनका चित्त वैराग्य से बहुत ही भींगा हुआ था; इसलिए उन्हें दीक्षा लेने की भावना बचपन से ही थी। लघुवय से ही उन्हें अन्तर में ऐसा लगता था कि 'ऐसा मनुष्य भव तो कदाचित् ही मिलता है; इस मूल्यवान मनुष्यभव का उपयोग तो मोक्ष प्राप्त करने के लिये ही कर लेना चाहिए। इसके लिये मुझे अवश्य दीक्षा लेनी है।' इस प्रकार उन्हें दीक्षा की प्रबल भावना वर्तती थी और अन्दर में दृढ़ निर्णय किया कि 'मुझे दीक्षा तो लेनी ही है।' यह बात उन्होंने अपनी एक सखी को कही। सखी द्वारा वह बात बाहर प्रसिद्ध हो गयी और चम्पाबेन को उलाहना मिला कि — ऐसे विचार क्यों करती हो? इसलिए भावना तीव्र होने पर भी, दीक्षा नहीं ली जा सकी। शर्मिली और नरम प्रकृति के कारण; तथा किससे दीक्षा लेनी, यह निर्णय नहीं हो सकने से दीक्षा की भावना साकार नहीं हो सकी।

तत्पश्चात् लगभग चौदह या पन्द्रहवें वर्ष में उन्हें वढ़वाण आना हुआ। उससे पहले वे हर दो-दो या तीन-तीन वर्ष में वढ़वाण आतीं और दो-चार महीने रहतीं, और फिर करांची जातीं। परन्तु पन्द्रहवें वर्ष में वढ़वाण आने के बाद तो बहुत समय वहीं व्यतीत करना हुआ। कभी बड़े भाई के घर वाँकानेर जाये; करांची भी बीच में जा आयीं। उनका चित्त वैराग्य से भीगा हुआ तो था ही; उसमें उनकी धर्म भावना को—देश में रहने के दौरान पोषण तथा दिशा मिले ऐसा हुआ। उन्हें पूज्य गुरुदेव से व्याख्यान द्वारा तत्त्व की बहुत बातें सुनने को मिलीं। गुरुदेव ने मोक्षमार्ग का जो यथार्थ प्ररूपण किया था, वह मैंने सुना था। तत्त्वज्ञान की यथार्थ सूक्ष्म बातें—सम्यग्दर्शन का माहात्म्य; आत्मा का स्वभाव; कर्म और आत्मा का स्वतन्त्र परिणमन-इत्यादि बहुत-बहुत बातें—सुनी थीं। उस विषय में मैं और बहिनश्री चर्चा करते। मैं उन्हें तत्त्व की, वैराग्य की या सत्पुरुष के प्रति भक्ति की जो-जो बात कहूँ, वे उन्हें बहुत रसपूर्वक सुनतीं। उन्हें ये बातें बहुत रुचती। पहले तो उन्हें यह बातें कठिन लगतीं और मन में लगता कि यह सब कैसे समझ में आयेगा? परन्तु फिर तो उन्होंने यह सब बहुत शीघ्रता से पकड़ लिया और गुरुदेव का तत्त्वज्ञान अन्दर में अपने भाव से स्वयं समझ लिया।

उनका जीवन प्रथम से ही साध्य लक्ष्यी था और वह साध्य, मोक्ष प्राप्ति था। इसलिए तत्त्व को स्पष्ट करे और वैराग्य-उपशम दृढ़ करे, ऐसी धार्मिक पुस्तकें पढ़ना बहिनश्री को रुचता था। इसके अतिरिक्त अन्य वाचन में समय बिल्कुल नहीं बिगाड़ती थीं।

'श्रीमद् राजचन्द्र' पुस्तक इस प्रकार हाथ में आयी कि —विक्रम

संवत् 1982 के साल में वढ़वाण के चातुर्मास पश्चात् गुरुदेव जब विहार करनेवाले थे, तब वजुभाई ने पूछा कि 'महाराज साहेब ! आप विहार करते हो तो आपके समागम के वियोग में अब हमें कौन सी पुस्तक पढ़ना ?' तब उन्होंने कहा — 'श्रीमद् राजचन्द्र' पढ़ो। इसलिए वह पुस्तक वजुभाई पुस्तकालय में से लाये। मेरे हाथ में आने पर वह पुस्तक मुझे बहुत रुचिकर हुई; इसलिए मैं उसे पढ़ता; बहिनश्री भी पढ़तीं; मैं और बहिनश्री साथ में बैठकर भी वह पुस्तक पढ़ते; उसमें प्ररूपित धर्मबोध के विषय में चर्चा भी करते। उसमें जो विचार कहे हों, उन्हें विचारते। बहिनश्री उनमें बहुत रस लेती थीं।

પૂજ્ય બહેનશ્રી ચંપાબેનતથા શ્રી હિંમતભાઇ

तदुपरान्त 'कर्म ने आत्मानो संयोग' नामक एक पुस्तक थी, वह भी हम पढ़ते और विचारते। वह पुस्तक वजुभाई को धार्मिक अभ्यास क्रम में पाठ्यपुस्तक रूप से थी। स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस की ओर से सौराष्ट्र में

जो परीक्षा ली जाती थी, उसकी वह पाठ्यपुस्तक थी, इसलिए वह पुस्तक घर में थी; वह मेरे हाथ में आयी। उसमें कही हुई बातें मुझे बहुत रुचती। बाद में पता पड़ा कि 'कर्म ने आत्मानो संयोग' वह कोई स्वतन्त्र मौलिक पुस्तक नहीं थी परन्तु मोक्षमार्गप्रकाशक नामक दिगम्बर जैन ग्रन्थ के दूसरे अधिकार का प्राय: भाषान्तर ही उसमें दिया हुआ है। उसमें बहुत तर्कसंगत और सुन्दर पद्धति से सिद्धान्त समझाये थे; जो स्वाभाविक रीति से ही अपने को रुचे। कर्म का कार्य क्या, आठ कर्म का प्रयोजन क्या? आत्मा और कर्म दोनों स्वतन्त्र हैं, मात्र उन्हें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है — ऐसी बहुत बातें उसमें प्रतीतिकर ढंग से समझायी हैं। उसमें स्पष्ट रीति से समझाया है कि बन्ध के प्रकार में जो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग है, उसमें जो प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध है, वह गौणबन्ध है और उसका कारण योग है तथा जो स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध है, वह मुख्य बन्ध है और उसका कारण कषाय है। इसका अर्थ यह हुआ कि बन्ध होने में कायादि की चञ्चलता महत्त्व की नहीं, परन्तु कषाय परिणाम महत्त्व के हैं। यह बात बहुत न्यायसंगत होने से मुझे बहुत प्रिय थी; बहिनश्री को भी यह रुचती थी। इस प्रकार उस पुस्तक की बहुत-बहुत बातें हम दोनों भाई-बहिन साथ में बैठकर पढ़ते और चर्चा करते। बहिनश्री को भी उन बातों में बहुत रस आता। दूसरी भी कोई-कोई पुस्तक हम साथ में पढ़ते और विचारते, उसमें से बहिनश्री को, पूज्य गुरुदेव के पास जो सुना था, उसकी अच्छी पकड़ आयी थी।

मैं तो अनिर्णयदशा में रहता, विचारों में ही अटक जाता; विचार से सामान्यरूप से जँचे, परन्तु 'ऐसा ही है' — ऐसा निर्णय नहीं होता।

बहिनश्री को तो अन्तर में निर्णय ही हो जाता। वे तुरन्त ही निर्णय करे और कहे कि 'मुझे तो यही बात सत्य लगती है।' एक बार उनके साथ कोई चर्चा हो रही थी, तब मैंने कहा — 'क्रोध आत्मा का स्वभाव नहीं' — यह किस प्रकार निर्णय हो ? उन्होंने तुरन्त ही कहा — 'यदि क्रोध, आत्मा का स्वभाव होवे तो उससे ज्ञान को पुष्टि मिलनी चाहिए; स्वभाव एक-दूसरे को घात नहीं करता परन्तु क्रोध करें, तब ज्ञान कुण्ठित होता है; इसलिए वह आत्मा का स्वभाव नहीं। क्षमा, ज्ञान को रोकती नहीं, इसलिए क्षमा, जीव का स्वभाव है।'

तत्पश्चात् — कौन से साल में यह पता नहीं, कदाचित् बाद में होगा — उन्होंने परमागम के एक अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त में अपना दृढ़ प्रतीति भाव वजनपूर्वक प्रसिद्ध किया। मैंने पूछा — 'जीव जब अशुद्धि करे, तब भी उसे सामर्थ्य-अपेक्षा से शुद्धि रहती है, यह शास्त्र सम्मत हकीकत है। जीव, राग-द्वेष करे और उसी समय एक अपेक्षा से-स्वभाव अपेक्षा से शुद्ध ! यह किस प्रकार होगा ?'

उन्होंने दृष्टान्त देकर कहा कि 'शक्कर की डली, कालीजीरी के चूरण में रखी हो तो क्या शक्कर का मीठापन चला जाता है ? ऊपर-ऊपर कड़वाहट आवे परन्तु अन्दर तो मीठास है।' मैंने कहा — 'यह दृष्टान्त जमता नहीं क्योंकि आत्मा तो एक अखण्ड पदार्थ है और शक्कर तो अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है। बीच के परमाणुओं को कालीजीरी स्पर्श भी नहीं करती; इसलिए वह तो मीठे रहेंगे, कड़वे कहाँ से होंगे ? परन्तु आत्मा तो एक अखण्ड पदार्थ है। उसमें एक ही समय में शुद्ध और अशुद्ध, ये दो एक साथ एक ही वस्तु में किस प्रकार हो सकते हैं ?'

उन्होंने कहा — 'दृष्टान्त जमता हो या न जमता हो परन्तु तत्त्व तो ऐसा ही है और मुझे ऐसा जमता है।' ऐसा वे कहतीं। इस प्रकार उन्हें बहुत-से आध्यात्मिक तथ्य सहजरूप से अन्दर जम जाते।

इस प्रकार उन्होंने बहुत-से सिद्धान्त थोड़े ही काल में पचा लिये। वे बहुत रसपूर्वक धार्मिक बातें सुनतीं और विचारतीं। पूरे दिन, घर के कामकाज के समय भी, उन्हें वे ही विचार चला करते। पूरे दिन भाई मेरे साथ बैठे रहें और मुझे समझावे तो अच्छा — ऐसा उन्हें लगा रहता। मैं उन्हें ऐसा कहता — 'अपने को स्वतन्त्ररूप से और निष्पक्षरूप से विचार करना चाहिए। जैन में जन्मे, इसलिए यही धर्म सच्चा है — ऐसा मानकर नहीं चलना, निष्पक्षरूप से विचार करना।' निष्पक्षरूप से विचारकर भी उन्हें तो जैनतत्त्वज्ञान ही जमता। वे कहतीं — 'मैं मध्यस्थभाव से—निष्पक्षरूप से विचार करती हूँ तो भी मुझे तो ऐसा ही अर्थात् जिनेन्द्र के कहे अनुसार ही सत्य लगता है।'

मैं उस समय अन्यदर्शन की पुस्तकें भी शक्तिप्रमाण, समयानुसार पढ़ता था। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने 'योगवशिष्ठ' पुस्तक की प्रेरणा की है, इसलिए 'योगवशिष्ठ' के भी कितने ही प्रकरण पढ़े थे। गाँधीजी के विचार बहुत पढ़ता; गीता पढ़ी। तदुपरान्त 'रामकृष्ण परमहंस', 'रामतीर्थ' इत्यादि के जीवनचरित्र भी पढ़ने के लिये ले आता। मुझे अन्दर ऐसा रहा करता कि अपने को 'सत्य क्या है' यह न्यायपूर्वक निर्णय करना चाहिए। क्योंकि गाँधीजी जैसे कितने ही बड़े लोग अन्य धर्म में हैं तो अन्य धर्म मिथ्या हो — ऐसा एकदम कैसे कहा जाये ? — ऐसे विचारों में मैं अटका करता था। तब बहिनश्री को तो सहजरूप से जैनधर्म में कथित सिद्धान्त ही

जम जाते। 'मुझे तो यह न्याय ही जमते हैं' — ऐसा वे कहतीं और पहली बात की (जीव में अशुद्धि के समय भी सामर्थ्य अपेक्षा से शुद्धि किस प्रकार रहती है - इस बात की) चर्चा तो अनेक बार करते।

तत्त्वसम्बन्धी विचार स्पष्ट हो तथा उनका घोलन हो, इस हेतु से हम तात्त्विक विषयों पर निबन्ध-लेख लिखते; उसमें पूज्य बहिनश्री ने निम्न विषयों पर लेख लिखे थे :— (1) जगत् क्या और यह विचित्रता का कारण क्या? (2) सुख का सच्चा स्वरूप और उसका सच्चा उपाय, (3) किस मार्ग पर हूँ? (4) मोक्ष की आवश्यकता क्यों? (5) देह और आत्मा भिन्न—किस न्याय से? (6) कर्म ग्रहण करने का आत्मा का सहज स्वभाव नहीं (7) दया भी शुभराग है; आत्मा का सहज स्वभाव नहीं।

तत्पश्चात् मैं सूरत गया, तब मुझे वह पत्र लिखती। उसमें वे अपने धार्मिक विचार बतलातीं। 'उदय और उदीरणा का स्वरूप क्या है? इन दोनों में क्या अन्तर है? आज मैं आने वाला होऊँगा परन्तु यदि न आ सकूँ तो वह उदय कहलायेगा या उदीरणा? उसमें मोहकर्म का क्या कार्य है? उसमें सातावेदनीयकर्म अथवा असातावेदनीयकर्म क्या करता है?' इत्यादि बाबत मैं विचारूँ और लिखूँ, बहिनश्री भी विचारे और लिखे कि मुझे ऐसा जमता है — इस प्रकार उनके मुख्यरूप से धार्मिक पत्र आते थे।

यद्यपि बहिनश्री आजन्म वैरागी थीं। मुझे आत्मा का कर ही लेना है — ऐसी उग्र भावना उन्हें बालपन से ही वर्तती थी और वे अनेक सद्गुणों की धारक थीं, तथापि उन्हें मोक्षमार्ग के पुरुषार्थ की सच्ची विधि हाथ आयी, वह तो सम्पूर्णत: परमोपकारी गुरुदेव के परम-परम प्रताप से ही। बहिनश्री के हृदय में तारणहार गुरुदेव के प्रति असीम पारावार भक्ति है।

गुरुदेव के उपकारों का वर्णन करते हुए वे गद्‌गद् हो जाती हैं। 'मैं तो पामर हूँ, सब गुरुदेव ने ही दिया है, सब गुरुदेव का ही है' — ऐसा उनके आत्मा के प्रदेश-प्रदेश पुकारते हैं।

ऐसे परमोपकारी गुरुदेव के दर्शन और उनके व्याख्यान श्रवण का प्रथम पावन योग बहिनश्री को वढ़वाण में श्री नाराणभाई की दीक्षा के प्रसङ्ग पर विक्रम संवत् 1985 में प्राप्त हुआ था। उस प्रसङ्ग पर थोड़े दिन पूज्य गुरुदेव के तत्त्वज्ञान भरपूर पुरुषार्थ प्रेरक प्रवचन सुनकर बहिनश्री को अत्यन्त आनन्द हुआ था।

पश्चात्, दूसरी बार बहिनश्री को भावनगर में बहुत दिन तक व्याख्यान श्रवण का योग प्राप्त हुआ था। भाईश्री वजुभाई भावनगर में इंजीनियररूप से नौकरी करते थे, तब बहिनश्री वहाँ गयी थीं और गुरुदेव की भी उस समय भावनगर में स्थिति थी। बहिनश्री बहुत एकाग्रता से गुरुदेव के व्याख्यान सुनतीं और घर आकर लिख लेतीं। वह लिखान दासभाई के (पुरुषोत्तमदास कामदार के) पढ़ने में आया और पढ़कर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने गुरुदेव को कहा — 'साहेब! वजुभाई की एक बहिन है, वह आपका व्याख्यान घर जाकर सब लिख लेती हैं; इतना सुन्दर लिखती हैं कि न्याय कहीं जरा भी विपरीत होता नहीं या कोई छोटी बात भी छूट नहीं जाती।' फिर एक बार गुरुदेव, वजुभाई के यहाँ आहार लेने को पधारे थे, तब आहार देने के समय बहिनश्री के शान्त, धीर-गम्भीर योग इत्यादि से गुरुदेव को उनकी संस्कारिता और सुपात्रता का ख्याल आ गया; और उपाश्रय में दासभाई को कहा कि मैंने वजुभाई की बहिन को देखा है, बहिन संस्कारी है।

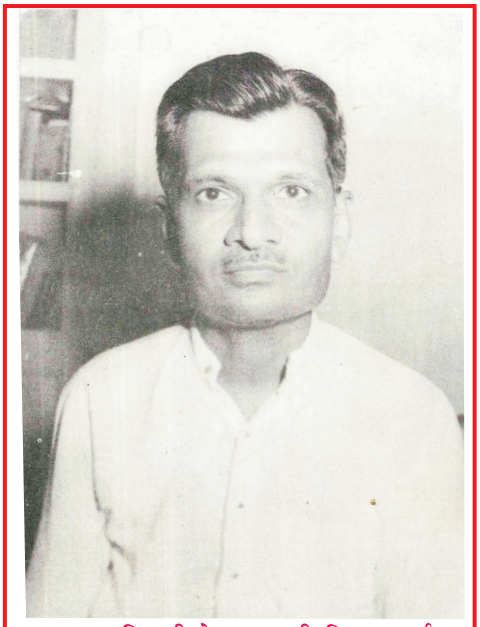

पूज्य बहिनश्री के बन्धु श्री हिम्मतभाई

बहिनश्री तत्पश्चात् वींछिया गयी थी, पोरबन्दर गयीं थी, जामनगर गयीं थी—ऐसे अलग-अलग गाँव गयीं थीं। वे गुरुदेव का जो सुनतीं, वह ऊपर-ऊपर से सुनकर निकाल नहीं देतीं परन्तु उस पर बराबर विचार करतीं। अपने जीवन में कैसे उतारना — इस हेतु से वे सुनतीं। भले मात्र पाँच-सात दिन सुनकर आवें, परन्तु अन्तर में मंथन करके उसका रहस्य ग्रहण कर लेतीं।

बहिनश्री को गुरुदेव के प्रवचन श्रवण के प्रताप से पहले से — समकित होने के पहले वर्ष-दो वर्ष पहले से—अन्दर से जोर आने लगा कि 'मुझे समकित तो लेना ही है, इस भव में समकित न लें तो यह मनुष्यपना किस काम का? समकित होगा ही... समकित लेना ही है।' एक बार मैंने पूछा—'चम्पा! समकित कितना दूर है?' तो कोहनी तक का हाथ बताकर कहा— 'इतना'—ऐसे विश्वास से कहा। मुझे मन में लगा कि 'बहिन को समकित क्या चीज है, उसकी पूरी खबर नहीं लगती। समकित होने पर तो सिद्ध भगवान जैसे अतीन्द्रिय आनन्द का आंशिक अनुभव होता है परन्तु बहिन, समकित को सामान्य चीज गिनकर कहती लगती है।' फिर मैं दूसरी बार अवकाश में सूरत से वापस

वढ़वाण (या वाँकानेर) आया तब फिर से मैंने पूछा—'चम्पा! अब समकित कितना दूर है ?' तो आधा हाथ बताकर वे कहें—'इतना'—इस प्रकार उन्हें अन्दर से ऐसा जोर आता और स्वयं को प्रगति हो रही है — ऐसा भी भासित होता।

विक्रम संवत् 1989 के कार्तिक माह में पूज्य गुरुदेव के दर्शन और वाणी का लाभ लेने के लिये हम भाई-बहिन जामनगर गये थे और वहाँ तीन दिन रहे थे।

वहाँ मैंने गुरुदेव को पूछा कि—'दो जीवों को आठों ही कर्म के प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग, और उदय इत्यादि सब समान होवे तो वे दोनों जीव उस समय समान भाव करेंगे या अलग भाव करेंगे ?'

गुरुदेव ने कहा—'अलग भाव करेंगे।'

मैंने कहा—'स्वभाव तो समान है और दोनों को कर्म के प्रकारों में भी सब समान है तो फिर अलग भाव किसलिए करेंगे ?'

उसका जवाब देते हुए गुरुदेव ने कहा—'अकारण पारिणामिक द्रव्य है, अर्थात् जिसका कोई कारण नहीं, ऐसे भाव से स्वतन्त्ररूप से परिणमता द्रव्य है; इसलिए उसे अपने भाव स्वाधीनरूप से करने में वस्तुतः कौन रोक सकता है? वह स्वतन्त्ररूप से अपना सब कर सकता है।'

ऊपर की प्रश्नोत्तरी के समय एक नियतिवादी सेठ, जो कि नियति पर जोर देकर पुरुषार्थ उड़ाते थे, वे वहाँ बैठे थे। उपाश्रय से बाहर निकलकर मैंने उन सेठ को कहा—'सेठ! पूज्य महाराज साहेब ने जीव की स्वाधीनता का कैसा सुन्दर स्पष्टीकरण किया!'

सेठ ने कहा— 'मुझे महाराज के साथ यही विवाद है। कानजी महाराज 'पाँच समवाय' मानते नहीं और मैं तो पाँचों समवाय मानता हूँ।' मैंने कहा—'पाँचों समवाय माने तो भी समान वजनरूप से तो कोई मान नहीं सकता। तुम नियति की मुख्यता मानते हो और वे पुरुषार्थ की मुख्यता मानते हैं। इन दोनों बातों में कौन सी बात न्याय संगत है ? अपने भाव, स्वयं करे तदनुसार हो यह बात सत्य है या 'नियति' ने बलजोरी से बैठाया हो तदनुसार हो- यह बात सत्य है ? तुम्हारी मान्यता में भी पाँच का समान वजन तो रहता नहीं; पाँच में तुम नियति को मुख्य मानते हो और महाराज साहेब पुरुषार्थ को मुख्य मानते हैं।' सेठ के पास कोई उत्तर नहीं था।

पूज्य महाराज साहेब के समक्ष जो चर्चा-वार्ता हो, वह मैं हमारे निवास जाकर बहिनश्री को कहता। यह स्वाधीनता और पुरुषार्थ की बात भी की थी। यह सुनकर बहिनश्री प्रमुदित हुईं थीं। बहिनश्री का भी, गुरुदेव की तरह, पुरुषार्थ ही जीवन मन्त्र है।

जामनगर तीन दिन रहकर, वहाँ से वापस आकर बहिनश्री अत्यन्त वैराग्य में आ गयी थी; और मुझे कहा भी अवश्य था कि 'समय चला जा रहा है, अब तो समकित के लिये बहुत पुरुषार्थ करना है।' इन वचनों के अनुसार वास्तव में उन्होंने उग्र पुरुषार्थ करके चार महीने में (विक्रम संवत् 1989 के चैत्र कृष्ण दशमी के मङ्गल दिन) निर्विकल्प समकित प्राप्त किया। भव-भ्रमण का भय टूटा, अन्तर में अनन्त काल स्थायी शाश्वत् निश्चिन्तता हो गयी।

हमारे घर में पहले से ही सदाचार का तथा सम्प्रदाय के अनुसार धार्मिक वातावरण तो था ही। पिताजी सरल, शुद्ध नैतिक जीवनवाले और

अत्यन्त प्रमाणिक थे तथा अनुकूलता के अनुसार सबेरे व्याख्यान सुनने तथा शाम को प्रतिक्रमण करने जाते थे। मातुश्री तेजस्वी बुद्धिवाली विशेष धार्मिक वृत्तिवाली और वीर्यवाली थी; धार्मिक क्रियाओं में अच्छा रस लेती। माता-पिता को गुलाबचन्दजी महाराज पर बहुत श्रद्धा-भक्ति थी। वे महाराज बहुत कष्ट झेलकर बहुत कठिन आचार पालते थे। पूज्य गुरुदेव भी कहते कि गुलाबचन्दजी बहुत कठोर क्रिया पालते हैं। उनके असर से हमारे कुटुम्ब में धार्मिक संस्कार अच्छे थे। वजुभाई तो शाम को स्कूल से आकर, स्कूल की पुस्तकें फेंककर तुरन्त उपाश्रय में दौड़ जाते। वे उपाश्रय में बहुत समय व्यतीत करते; सामायिक करें, कोई साधु-महाराज हों उनके पास जाकर नव तत्त्व, गति-आगति के बोल इत्यादि थोकडा और सूत्र की गाथायें इत्यादि सीखते। शाम को प्रतिक्रमण करते और कभी-साधु की तरह आचार पालने का और भिक्षावृत्ति से आहार करने का सम्प्रदाय में व्रत करते हैं वैसा-दसवाँ व्रत करते। अखिल काठियावाड़ स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस की परीक्षा देकर उसमें वे दूसरे नम्बर से उत्तीर्ण हुए थे। पूरा 'दसवैकालिक सूत्र' छोटी वय में मुख पाठ किया था।

ऐसे सदाचारी और धर्म प्रेमी कुटुम्ब में जन्मे हुए बहिनश्री के सदाचार और धर्म परायणता तो कोई अलग छाप पड़े ऐसी प्रथम से ही थी। बाल्यावस्था से ही उनके देह में उपशमरस के ढाले ढल गये थे। इस मनुष्यभव में शीघ्र मोक्ष के लिये पुरुषार्थ प्रगट करके भव-भ्रमण के टालने की उन्हें तीव्र चटपटी रहती थी। तदुपरान्त अनेक सद्गुणों की वे निकेतन थीं।

वे पूज्य गुरुदेव ने सिखाये तत्त्वज्ञानानुसार शास्त्र वांचन करतीं,

तदनुसार विचार मंथन करतीं, निर्णय की दृढ़ता के लिये उद्यम करतीं तथा स्व-पर भेदविज्ञान का तथा ध्यान का अभ्यास करतीं।

वे बारम्बार मौन धारण करतीं, कुटुम्बीजनों के साथ भी बहुत ही कम बोलतीं। बहुधा अपने आन्तरिक आत्मकार्य में ही लीन रहतीं।

वे स्वभाव से ही बहुत एकान्तप्रिय थीं, एकान्त में बैठकर वांचन, मनन, ध्यान करना उन्हें अति प्रिय था (सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद संवत् 1990 में वे सूरत आयीं थीं, तब भी वे दूसरी मंजिल के कमरे में पूरे दिन एकान्त में रहकर ज्ञान-ध्यान किया करतीं। वहाँ के उनके चार माह के निवास दौरान वे कदाचित् ही एक बार भी घर के बाहर निकली हों। पूरे दिन एकान्त में अध्यात्मरतरूप से अपने अन्दर का काम करते हुए थकती ही नहीं।)

પૂજ્ય બહેનશ્રી ચંપાબેન (સં.૧૯૯૦)

तदुपरान्त वे उपवास करें, रूखा खाये, भोजन में अल्प द्रव्य ही प्रयोग करें, कितनी ही बार बहुत दिनों तक मात्र छाछ-रोटी के अलावा कुछ न लें—ऐसी-ऐसी कायक्लेश की क्रियाएँ भी करें और कहें कि इसमें क्या बड़ी बात है ? नरक, तिर्यञ्च गति में जीव ने पराधीनरूप से कितना सहन किया है ?

घर का कामकाज करते हुए भी—रसोई बनाते, कपड़े धोते या

पानी भरते हुए भी —उन्हें सम्यक्त्व प्राप्ति की अथवा निज ज्ञायक भगवान के दर्शन की गहरी खटक रहा ही करती। संसार से वे बहुत उदासीन रहती थीं।

'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से' यह काव्य, बहिनश्री बारम्बार वैराग्यभाव से गातीं और उसमें से 'मैं कौन हूँ, आया कहाँ से और मेरा रूप क्या?' इत्यादि भाग पर बहुत गहराई से चिन्तन करती। 'दूर कां प्रभु दोड़ तुं, मारे रमत रमवी नथी' — यह प्रभु मिलन की स्फुरणा का गीत अथवा 'कंचनवरणो नाह रे मुने कोई मिलावो'— यह निज ज्ञायक भगवान के विरह दु:ख का गीत अति वेदनपूर्णभाव से गाते मैंने बहिनश्री को अनेक बार सुना है। 'संग त्यागी, अंग त्यागी, वचन-तरंग त्यागी, मन त्यागी, बुद्धि त्यागी, आपा शुद्ध कीनों है।' यह पद तथा 'कायानी विसारी माया, स्वरूपे समाया एवा, निर्ग्रन्थनो पन्थ भव-अन्तनो उपाय छे' यह पद, स्वरूप में समा जाने की भावना में सराबोर होकर वे अनेक बार गाती थी। 'मोही लागी लगन गुरु चरणन की' — यह भक्ति गीत गुरुदेव के सत्सङ्ग की उग्र भावना से भींग कर वे बहुत बार भक्ति विभोररूप से गातीं।

पूज्य बहिनश्री को बारम्बार ऐसे भाव आते कि कल गया, आज गया, ऐसे करते-करते पन्द्रह-सत्रह वर्ष चले गये; जिन्दगी जाने में क्या देर लगेगी? इसलिए प्रमाद छोड़कर, तत्त्वविचारपूर्वक पक्का निर्णय करके, शीघ्रता से आत्मप्राप्ति कर लेना योग्य है, प्रमाद करना योग्य नहीं है।

तथा उन्हें ऐसा जोर भी आता था कि 'इस भव में ही पक्का निर्णय करके अवश्य समकित लेना है'..... 'जरूर समकित होगा ही' ऐसा उन्हें अन्दर से विश्वास आता था।

— इस प्रकार विविध प्रकार के उद्यम परिणाम से परिणमन कर, कैसे भी करके सम्यक् पुरुषार्थ को पहुँचकर, पूज्य बहिनश्री ने अन्ततः विक्रम संवत् 1989 के चैत्र कृष्ण दशमी के पवित्र दिन वाँकानेर में निज ज्ञायक भगवान के मङ्गल दर्शन किये, अपूर्व सहजानन्द की पवित्र अनुभूति की, सिद्ध भगवान के वचनातीत सुख का मधुर स्वाद चखा और मोक्ष महल के मङ्गलमय द्वार खुल गये।

समकित होने के पश्चात् थोड़े दिन में पूज्य बहिनश्री को पूज्य पिताश्री के पास वढ़वाण जाना हुआ। चैत्र मास में वहाँ से पिताश्री का एक पारिवारिक प्रसङ्ग सम्बन्धी पोस्टकार्ड मुझे सूरत मिला। उसमें पीछे के भाग में पूज्य बहिनश्री ने निम्न अनुसार लिखा था —

'संसार दुःखमय है; इसलिए आत्मा को पुरुषार्थ करके उसमें से तार लेने की आवश्यकता है, प्रमाद करना योग्य नहीं। जैनदर्शन सत्य है — ऐसा मैंने तो जाना है; तुम भी प्रमाद छोड़कर, वैराग्य बढ़ाकर विचारोगे तो ऐसा ही ज्ञात होगा। प्रमाद कर्तव्य नहीं है।'

हम तो बहुत तौल-तौलकर शब्द बोलते; इसलिए उन्होंने जो ऐसा लिखा कि 'जैनदर्शन सत्य है—ऐसा मैंने तो जाना है' उसमें से मुझे ऐसा लगा कि 'क्या बहिन को सम्यग्दर्शन हुआ होगा? नहीं तो जैनदर्शन सत्य है—ऐसा मैंने तो जाना है, ऐसा, इतने जोरपूर्वक वे कैसे लिख सकती हैं?' मैंने फिर पत्र लिखा—'बहिन चम्पा! तुम लिखती हो कि जैनदर्शन सत्य है—ऐसा मैंने तो जाना है-तो क्या तुम्हें समकित हुआ है? क्योंकि समकित के बिना इतने जोरपूर्वक ऐसे शब्द नहीं निकलते।' उनका पत्र आया कि — 'इस आत्मा को परिभ्रमण का किनारा आ गया है।' उस पत्र

में दूसरा विशेष क्या लिखा था, वह अभी ख्याल में नहीं, क्योंकि वह पत्र खो गया है। 'संसार दु:खमय है.... जैनदर्शन सत्य है.... प्रमाद कर्तव्य नहीं' — ऐसा जिसमें लिखा था, वह पोस्टकार्ड तो अभी पड़ा है। उस दूसरे पत्र का एक वाक्य — 'इस आत्मा को परिभ्रमण का किनारा आ गया है।' इतना मुझे याद रह गया है। आगे-पीछे की लिखावट याद नहीं। बहिनश्री ने 'समकित हुआ है' ऐसा नहीं लिखा; स्वयं नम्र है न! इसलिए नम्रताभाव से भरपूर मात्र इतने शब्द निकले कि 'इस आत्मा को परिभ्रमण का किनारा आ गया है।'

पश्चात् मैं सूरत से अवकाश में वढ़वाण जब आया, तब मैंने पूज्य बहिनश्री को पूछा कि समकित होने पर क्या होता है ? तो कहा — 'शरीर तो आत्मा से एकदम भिन्न लगता है, पर का और विभाव का कर्ताभाव छूट जाता है, सिद्ध भगवान के अतीन्द्रिय सुख की वानगी प्रगट होती है और अन्तर में आनन्द का सागर उछलता है।' ऐसा कहने जितना कहा।

सम्यग्दर्शन प्राप्ति की आनन्दकारी बात परमोपकारी पूज्य गुरुदेव को विदित कराने के लिये बहिनश्री और मैं थोड़े दिन पश्चात् राजकोट गये; साथ में सुशीला भी थी। बहिनश्री का विचार यह बात गुरुदेव को एकान्त में कहने का था, उस समय एकान्त नहीं मिला, इसलिए हम वापस आये। पश्चात् मेरे अवकाश पूर्ण हो गये, इसलिए मैं तो सूरत गया।

पूज्य बहिनश्री वाँकानेर में थीं। उस समय दासभाई (पुरुषोत्तमदास कामदार) वाँकानेर आये। 'यहाँ से मैं गुरुदेव के दर्शन करने राजकोट जाता हूँ' ऐसा उन्होंने कहा। बहिनश्री ने वह अवसर ले लिया और कहा कि 'मुझे भी दर्शन करने आना है।' ऐसा कहकर बहिनश्री, दासभाई के

साथ राजकोट गयीं। भाभी भी साथ में गयीं। बहिनश्री का विचार गुरुदेव को एकान्त में कहने का था, इसलिए उन्होंने सदर के उपाश्रय में अन्दर जाकर पहले दासभाई को कहा — 'तुम जरा दूर खड़े रहो।' दासभाई, दूर से देख सके, उस प्रकार दूर खड़े रह गये। बहिनश्री, गुरुदेव के पास गयीं और भाव से दर्शन करके विनयपूर्वक नम्रता से बोलीं — 'साहेब! आपके प्रताप से मुझे आत्म-साक्षात्कार हुआ है।' गुरुदेव ने कहा — 'दासभाई! यहाँ नजदीक आओ,...' क्योंकि बहिनों के साथ गुरुदेव अकेले बात नहीं करते न! पश्चात् गुरुदेव ने जो पूछना था, वह बहिनश्री को पूछा — 'बहिन! तुम्हें आत्मसाक्षात्कार होने पर क्या हुआ?' बहिनश्री ने कहा — 'आत्मा अकर्ता हो गया; कर्तृत्व छूट गया और ज्ञाता हो गया'—इत्यादि कहा। मात्र स्वल्प प्रश्नों के उत्तरों से ही पूरा सन्तोष हो जाने से विशेष कुछ पूछने के बदले गुरुदेव स्थिर हो गये, शान्त-शान्त हो गये और थोड़े क्षण बाद गम्भीर होकर स्वगत बोले — 'ओहो! आत्मा कहाँ स्त्री या पुरुष है! आत्मा कहाँ बालक या वृद्ध है!!'

(बहिनश्री को उस समय मात्र उन्नीसवाँ वर्ष चल रहा था।)

स्वयं को परिभ्रमण का किनारा आ जाने की आनन्दकारी बात, उपरोक्तानुसार परमोपकारी गुरुदेव के समक्ष प्रमोदपूर्वक प्रस्तुत करके, पूज्य बहिनश्री वापस वाँकानेर (बड़े भाई वजुभाई के यहाँ पधारे)।

अब से (संवत् 1989 से) हर वर्ष पूज्य गुरुदेव जिस गाँव में चातुर्मास रहे हों, उस गाँव में आपश्री के कल्याणकारी व्याख्यानों का लाभ लेने के लिये पूज्य बहिनश्री ने चार महीने रहना शुरु किया। बहिन शान्ताबेन तो तद्नुसार रहती ही थीं। पूज्य गुरुदेव ने उनसे कहा — 'यह

बहिन (चम्पाबेन) बहुत पात्र है, गम्भीर है, विचारक है, गहरी है, और वैरागी है, स्थिर है; तुम्हें लाभ हो ऐसी है, तुम्हें लाभ लेने जैसा है।' — इस प्रकार पूज्य गुरुदेव ने प्रेरणा की। इस तरह पूज्य बहिनश्री (चम्पाबेन) और बहिन शान्ताबेन का चातुर्मास में साथ रहने का योग शुरु हुआ।

पूज्य गुरुदेव ने विक्रम संवत् 1991 में सोनगढ़ में (परिवर्तन) किया। तत्पश्चात् संवत् 1994 में ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन 'स्वाध्याय मन्दिर' के उद्घाटन समय हम दोनों भाईयों के लिये एक यादगार प्रसङ्ग बना। पूज्य गुरुदेव उस दिन प्रवचन में दृढ़ता से बोले कि— 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव, महाविदेह में गये थे और समवसरण में श्री सीमन्धर भगवान की वाणी सुनने के लिये वहाँ आठ दिन रहे थे - यह सब नजरों से देखी हुई बात है; कोई माने या न माने परन्तु यह बात सत्य है।' इस प्रकार का प्रायः बोले। वजुभाई और मैं विचार करने लगे कि—गुरुदेव आज प्रवचन में 'यह बात ऐसी ही है'—इत्यादि इतना अधिक जोरपूर्वक क्या बोले? भाई कहे, हम गुरुदेव से पूछने चलें। हमने बहिनश्री को कहा कि — 'गुरुदेव आज प्रवचन में ऐसा कुछ जो बोले, उस विषय में हमें उनसे पूछने जाना है।' बहिनश्री ने कहा — 'जाओ।' बहिनश्री के मन में ऐसा था कि भाई कुछ जानेंगे तो इन्हें लाभ का कारण होगा; मुझे तो कहना ही नहीं, महाराज साहेब को कहना होगा तो कहेंगे; इसलिए कहा — 'भले जाओ।'

हम पूज्य गुरुदेव के पास गये और उनसे पूछा — ''साहेब! आज प्रवचन में आपने 'यह नजरों से देखी हुई बात है' इत्यादि क्या कहा?'' पहले तो गुरुदेव ने, 'ऐसा अङ्गत-व्यक्तिगत कुछ पूछने का नहीं होता' ऐसा जरा जोर से कहा; वह सुनकर हम मौन हो गये और गुरुदेव के साथ

स्वाध्याय मन्दिर के बरामदे में चक्कर लगाने लगे। फिर गुरुदेव पाट पर बैठे, हम उनके पास नीचे बैठ गये। बैठने के बाद पूज्य गुरुदेव ने थोड़ी संक्षिप्त-संक्षिप्त बातें कीं। गुरुदेव, गम्भीर होकर बोले — 'बहिन को (बहिनश्री चम्पाबेन को) संवत् 1993 में बैशाख कृष्ण अष्टमी के दिन, अनुभव में से बाहर आने पर पूर्वभव का जातिस्मरण हुआ है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेह में सीमन्धर भगवान के समवसरण में पधारे थे, तब बहिन और हम वहाँ थे। मैं वहाँ राजकुमार था - ऐसा बहिन को स्मरण में आया है। मुझे अन्दर से आता था कि 'मैं राजकुमार हूँ, मखमल के और जरी के वस्त्र पहिने हैं' — इत्यादि। परन्तु बहिन ने कहा, इसलिए बहुत स्पष्ट हुआ, पक्का हुआ। बहिन सेठ के पुत्र थे - इत्यादि संक्षिप्त-संक्षिप्त थोड़ी बातें कीं। परन्तु साथ में ऐसा भी कहा कि यह बात किसी को कहने की नहीं है..... किसी को नहीं। वजुभाई को उस समय बहिनश्री के प्रति इतना अधिक भाव आ गया कि उन्होंने हर्षाश्रु के साथ गद्गद् स्वर में कहा — 'साहेब! बहिनश्री की वन्दना करने की तो छूट दो।' गुरुदेव ने कहा — 'नहीं; उन्हें भी नहीं, किसी को नहीं क्योंकि लोगों में बाहर पता पड़ जायेगा, शंका होगी कि भाई, वन्दना करते हैं, इसलिए कुछ लगता है!'

पश्चात् बहिनश्री के पास जाने पर उन्होंने हमसे पूछा — 'क्या तुम गुरुदेव के पास हो आये?' हमने हँसते-हँसते कहा — गुरुदेव ने तुम्हें भी कहने से इनकार किया है। तो भी हमने तो, बहिनश्री ने ही स्वयं गुरुदेव को कही हुई बात उन्हें भी कहने की गुरुदेव ने 'मना' कही, इससे हुए आश्चर्य के साथ, उन्हें सब कह दिया.....

अब, तत्पश्चात का तो सब परिचित है। पहले का जितना याद

आया, उतना कहा। वरना प्रसङ्ग तो बहुत बने हों, परन्तु स्मरणशक्ति कम और उन प्रसङ्गों को बहुत वर्ष बीत गये, इसलिए बहुत प्रसङ्ग याद नहीं होते।

(सभा में से प्रश्न : 'इस आत्मा को परिभ्रमण का किनारा आ गया है' — इस लिखावटवाले पत्र का आपने क्या उत्तर लिखा, वह योग्य लगे तो कहने की विनती।)

परिभ्रमण के किनारेवाला पत्र मिलने के बाद मैंने उन्हें इस प्रकार लिखा था—

'बहिन चम्पा!

पत्र पढ़कर मैं तो आश्चर्यचकित ही हो गया हूँ। कोई न कोई जगा ही करता है—ऐसा जानकर हर्ष होता है। पंचम काल के अन्त तक शासन जीवन्त है। कहते हैं कि इस काल में सन्त मिलना दुर्लभ है। मैं तो सन्त को मिलने-ढूँढ़ने-नहीं गया तो सन्त मेरे यहाँ पधारे हों—ऐसा लगता है! इतनी दुर्लभताएँ मिलीं, तथापि यदि कुछ न किया तो किसका दोष?

मेरी शङ्काएँ क्या-क्या हैं, मैं कहाँ अटकता हूँ, मेरा स्वभाव, मेरी निर्बलताएँ - सब तुम्हारे ज्ञान से बाहर नहीं हैं। 'निशानी कहाँ बताऊँ रे, तेरो अगम अगोचररूप' ऐसे जवाब की अपेक्षा बहुत अधिक आशा मैं रखता हूँ।'

— इस प्रकार अपूर्व सानन्दाश्चर्य की गहरी भावना व्यक्त करते शब्द पत्र में लिख गये थे।

वास्तव में इस काल में परमार्थ को अनुकूल सर्व योग अपने को

सम्प्राप्त हुए हैं–यह अपना परम–परम सद्भाग्य है। अपने को बाह्य योग मिलने में तो कुछ न्यूनता नहीं रही; अब पुरुषार्थ तो अपने को ही करना रहता है। स्वानुभूतियुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेव का, चेतन को जगानेवाला स्वानुभूति भरा मधुर रणकार वर्षों तक अपने को सुनने को मिला, तथा आज भी प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के स्वानुभूतिरस सराबोर सहज वचनामृतों का मधुर श्रवण मिल रहा है, उसके समान परम अहो भाग्य क्या? अब तो जो कुछ कमी है, वह अपने पुरुषार्थ की ही है। ज्ञानियों के प्रताप से अपने को सच्चा पुरुषार्थ (समझ) आ जाये–यही अन्तर की भावना है।

स्वानुभूतिपरिणत परमोपकारी पूज्य गुरुदेव के तथा स्वानुभूतिपरिणत परमोपकारी पूज्य बहिनश्री के पवित्र चरण–कमल सदा ही हृदय में संस्थापित रहो।

✧✧✧

सखी देख्युं कौतुक आज

(राग : आवो आवो सीमन्धरनाथ)

सखी! देख्युं कौतुक आज माता 'तेज' घरे;
एक आव्या विदेही महेमान, नीरखे नेन ठरे।
विदेही विभूति महान भरते पाय घरे;
मा 'तेज' तणे दरबार 'चंपा' पुष्प खीले। .....सखी।

शी बाललीला निर्दोष, सौनां चित्त हरे;
शा मीठा कुंवरीबोल, मुखथी फूल झरे।
शी मुद्रा चंद्रनी धार, अमृत-निर्झरणी;
उर सौम्य सरल सुविशाल, नेनन भयहरणी। .....सखी।

करी बालवये बहु जोर, आतमध्यान धर्युं;
सांघी आराधनदोर, सम्यक् तत्त्व लह्युं।
मीठी मीठी विदेहनी वात तारे उर भरी;
अम आत्म उजाळनहार, धर्मप्रकाशकरी। .....सखी।

सीमंधर-गणधर-संतनां, तमे सत्संगी;
अम पामर तारण काज पधार्यां करुणांगी।
तुज ज्ञान-ध्याननो रंग अम आदर्श रहो;
हो शिवपद तक तुज संग, माता! हाथ ग्रहो। .....सखी।

-२-

पत्रव्यवहार

इस विभाग में प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन ने अपने बन्धु श्री हिम्मतभाई के प्रति लघुवय में लिखे हुए अध्यात्मरस भरपूर पत्रों के अंश दिये गये हैं।

तदुपरान्त उन्होंने अन्य सगे स्नेही तथा साधर्मियों के प्रति लिखे हुए पत्रों के अंशों का भी इसमें समावेश किया गया है।

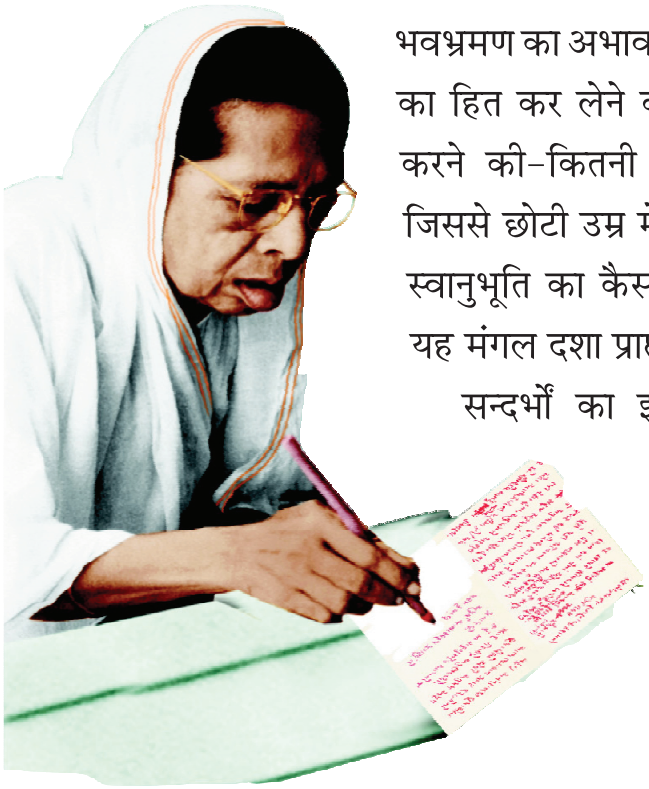

बहिनश्री को छोटी उम्र से ही भवभ्रमण का अभाव करने की और आत्मा का हित कर लेने की—सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की-कितनी छटपटाहट थी और जिससे छोटी उम्र में ही सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति का कैसा उग्र पुरुषार्थ करके यह मंगल दशा प्राप्त कर ली थी, इत्यादि सन्दर्भों का इस पत्रव्यवहार द्वारा सुन्दर ख्याल आता है। आत्मार्थी जीवों को इन पत्रों द्वारा अवश्य पुरुषार्थ की प्रेरणा प्राप्त होगी।

पूज्य बहिनश्री सम्यक्त्व प्राप्ति से पहले
बहुत भावपूर्वक गाते थे, वह गीत

अमूल तत्त्वविचार

(हरिगीत छन्द)

बहु पुण्यकेरा पुंजथी, शुभ देह मानवनो मळयो,
तोये अरे! भवचक्रनो आंटो नहि एके टळयो;
सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो? १
लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युं ते तो कहो?
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं, ए नय ग्रहो;
वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो,
एनो विचार नहि अहोहो! एक पळ तमने हवो!!! २
निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले,
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंझीरेथी नीकळे;
परवस्तुमां नहि मुंझवो, एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धांत के पश्चावत् दुःख नहीं। ३
हुं कोण छुं क्यांथी थयो? शुं स्वरूप मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के एक परहरु?
एना विचाक विवेकपूर्वक शांत भवे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननां सिद्धांततत्त्व अनुभव्या॥ ४
ते प्राप्त करवा वचन कोनुं सत्य केवळ मानवुं?
निर्दोष नरनुं कथन मानो 'तेह' जेणे अनुभव्युं;
रे! आत्म तारा! आत्म तारो! शीघ्र एने ओळखो,
सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो। ५

– श्रीमद् राजचंद्र

अमूल्य तत्त्व विचार

(श्रीमद्‌जी विरचित गुजराती काव्य का हिन्दी रूपान्तरण)

(हरिगीतिका)

बहु पुण्य-पुञ्ज प्रसङ्ग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला॥
सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है॥
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिये॥
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है॥
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तस्तत्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो॥
पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुःख भरा॥
मैं कौन हूँ आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या॥
इसका विचार विवेकपूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये॥
किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे? वह स्वानुभूति प्रसूत है॥
तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिए।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिए॥

पत्रव्यवहार

वि. सं. 1987-88
(ई.सं. 1931-32)

.....!

आत्मा आनन्दमय है, ज्ञानपिण्ड है, सहजानन्दी है; किन्तु उसको पाने के लिये अनादि काल से सच्चा प्रयत्न नहीं किया है। इस भव में नहीं करेगा तो, किस भव में करने का सोचा है ?

जड़ एवं चैतन्य दोनों के स्वभाव प्रतिपक्ष हैं। रूपी ऐसे जड़ अर्थात् मूर्त-पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श सहित हैं और आत्मा उससे रहित है, अरूपी है।

किन्तु जीव को यह सब भाषा में बोलनेमात्र है, उसे अपने स्वरूप का प्रेम कहाँ आता है ? प्रेम लाये बिना मोक्ष नहीं मिलेगा। पुरुषार्थ किये बिना, परिश्रम किये बिना, अनन्त सुख तीन काल में नहीं मिल सकता।

बस यह ही....

विशेष लिखने से क्या होगा ? अन्तःकरण में परिणमन किये बिना, संसार के प्रति उदासीनता लाये बिना, वैराग्यबल बढ़ाए बिना, उपशमबल बढ़ाए बिना, अपने अनन्त सुख का मार्ग हमें नहीं मिलेगा। जीव करता कुछ नहीं और थोड़े में अधिक समझकर बैठ जाता है। हमें यदि स्वस्वरूप की चाहना हो, परिभ्रमण से थके हों तो, धीरे-धीरे (शनैः शनैः) मार्ग में चले बिना, पुरुषार्थ किये बिना, बातें करने से या पत्र लिखने से स्वस्वरूप

नहीं मिलेगा। किन्तु जीव अभी परिभ्रमण से थका ही कहाँ है ? अपने पर प्रेम ही कहाँ है ?—अन्यथा बिना पुरुषार्थ किये चैन से बैठ नहीं सकता।

आप तो पुरुषार्थ करते होंगे। मैं मुझे प्रमादी लगती हूँ। कुछ नवीन या विशेष नहीं हो रहा है—ऐसा लगता है; बस इतना ही; वैराग्यबल बढ़ाना। मुझे और आपको यह ही कर्तव्य है।

लि.

बहिन चम्पा के वन्दन

☆☆☆

करांची, दिनांक 10-6-1930

(वि. सं. 1986

ज्येष्ठ शुक्ला 14, मंगलवार)

पूज्य ज्येष्ठ बन्धु की पवित्र सेवा में,

करांची से लि. बहिन चम्पा के बहुत ही प्रेम से पायवन्दन स्वीकार करना।

विशेष में लिखना है कि, आपका पत्र मिला, पढ़कर हकीकत जान ली।

बन्धु! यहाँ आत्मा की सार्थकता नहीं बन सकती, इसलिए उदासीनता वर्तती है। किसी समय आत्मा ऐसे विचार में चढ़ जाता है कि कोई बुलाये तो मेरा ध्यान भी नहीं होता है। काम करना भी भूल जाती हूँ। मेरे दिन 'आत्मा के विचार ही विचार में' चले जाते हैं। आत्मा के विचार में किसी के साथ बोलना भी सुहाता नहीं है। अभी तक आत्मा के विचार

चलते हैं। वहाँ का सत्संग मुझे बहुत याद आता है। अब तो वहाँ आकर, मोक्ष, मोक्ष और मोक्ष की ओर लक्ष्य रखना है। एक दिन जब यह आत्मा ऊँची दशा को पहुँचेगा, तब संयमी होगा। पत्र लिखते रहना; प्रमाद नहीं करना; जरूर लिखना। आपके पत्र से आनन्द होगा। आज आपका पत्र आने से मुझे बहुत ही आनन्द हुआ है। बस, यह ही-

लि.

आत्मार्थी बहिन चम्पा

☆☆☆

करांची

आत्मार्थी बन्धु,

जीव ने अनादि काल से अमृतस्वरूप ऐसे आत्मा को नहीं पहचाना है, इसलिए जन्म-मरण हुआ करते हैं। अमृतस्वरूप-ज्ञानस्वरूप ऐसे आत्मा की पहचान करानेवाले पूज्य कानजी महाराज जैसे गुरु अब मिले, इसलिए ऐसी भावना होती है कि—यह जन्म-मरण कैसे टले ? पुरुषार्थ कैसे प्रारम्भ हो ? आत्मस्वरूप की प्राप्ति कैसे हो ? ऐसी भावना रहा करती है, परन्तु यहाँ गुरु के दर्शन नहीं है, उनकी वाणी नहीं है, सत्संग नहीं है, अत: यहाँ रहना दुष्कर हो गया है। यद्यपि वचन से ही मैं करांची में रही हूँ; फिर भी जन्म-मरण का अन्त किस उपाय से हो, ऐसी भावना के कारण यहाँ रहना जरा भी नहीं पुसाता है।

भैया, मुझे लगता है कि यदि मैं यहाँ ज्यादा दिन रहूँगी तो पुरुषार्थ मन्द हो जाएगा, प्रमादी हो जाऊँगी, क्योंकि यहाँ धार्मिक साधनों की

दुर्लभता है। अतः यहाँ स्थायी कैसे रहना? आप लिखते हैं कि, धर्म अर्थात् (बिना हठ के सहज ही) सत्य बोलना, सरलता, नम्रता, सहनशीलता रखना आदि, परन्तु भैया! ये सभी गुण यहाँ के वातावरण के अनुसार टिके रहें, ऐसा मुझे नहीं लगता, इनको टिकाने के लिये, कड़ा पुरुषार्थ रखने के लिये, आन्तरिक धर्म प्रकट करने के लिये, आगे बढ़ने के लिये, वैसा वाँचन एवं वातावरण तो चाहिए ही।

भाई! ऐसे सुन्दर मनुष्यदेह का एक पल भी व्यर्थ नहीं जाये—ऐसी मेरी इच्छा है।

बहुत बार ऐसे स्वप्न आते हैं कि जैसे मैं और आप प्रवचन सुनने गये हैं। मैं आपको प्रश्न पूछती हूँ, आप उत्तर देते हैं; इतनी देर में आँखें खुल जाती हैं। तब ऐसा लगता है कि, कहाँ वह सत्संग और कहाँ वह भाई? कहाँ वह देश और कहाँ मैं? उस समय आप गाते हो वह गीत मुझे बहुत ही याद आता है।

'जागकर देखूँ तो जगत दीखे नहीं, निंद में अटपटे रंग भासे'

बस इतना ही। अब लम्बा पत्र लिखने का मुझे अवकाश नहीं है। अभी मुझे सुशीलाभाभी को भी पत्र लिखना है। मेरे पत्र का उत्तर तुरन्त लिखें।

लि.

आपके पत्र की आतुरता से इन्तजार करती

आपकी नन्हीं बहिन के पायवन्दन

☆☆☆

आदरणीय पूज्य बन्धु की सेवा में,

वढ़वाण शहर से लि. आपकी छोटी बहन चम्पा के पायवन्दन अतीव प्रेम से स्वीकारना।

विशेष लिखना कि, आपका पोस्टकार्ड एवं कवर (लिफाफा) दोनों मिले। आप लिखते हैं, वह सब सत्य है। आपका पत्र पढ़कर, मैंने बहुत विचार किया। मेरा आत्मा कितना दृढ़ है; उसका बहुत विचार किया। आपको ऐसा लगेगा कि 'तेरे आत्मभाव उन्नतिक्रम में होने से, तुझे सब सरल लगता है; परन्तु भाई! मैं जब बहिन के घर करांची थी, तब से मुझे धर्म के संस्कार तो हैं।' यद्यपि बहिन के घर थी, तब इतना गहन ज्ञान नहीं था, परन्तु था सही'।

'मनुष्यजन्म पाना दुर्लभ', 'सत्य बोलना', 'क्रोध नहीं करना', 'ब्रह्मचर्य पालन से इतना लाभ' आदि थोकड़े (चौदहमार्गणा वर्णन) पढ़ने से एवं धार्मिक पुस्तकें पढ़ने से, मैं जानती थी। मेरा आत्मा बहुत वैराग्यवन्त था। धीरे-धीरे पुस्तकें पढ़ने से वैराग्य बढ़ता गया एवं मेरा आत्मा इस बाह्यज्ञान से इतना दृढ़ हो गया कि मुझे ब्रह्मचर्य में वास्तविक महत्ता लगती थी। उस समय के मेरे विचार धर्म, वैराग्य, ब्रह्मचर्य के विषय में बहुत दृढ़ थे। करांची में बचपन से ही मुझे त्याग, ब्रह्मचर्य इत्यादि की बहुत महत्ता थी। इस समय जैसे-जैसे ज्ञान में गहनता आती गयी, वैसे-वैसे धर्म के विषय में, वैराग्य-त्याग, ब्रह्मचर्य के विषय में अति दृढ़ता हो गयी है; आत्मा का स्वरूप कुछ भिन्न है, ऐसा समझ में आया तो अब यह दृढ़ता निःशंकरूप से इसी तरह रहेगी। उस समय शायद ऊपर-ऊपर की (ऊपरी) दृढ़ता हो—ऐसा आप मानो-उस बात को डेढ़

वर्ष हो गया है। पूर्व की दृढ़ता यथार्थ दृढ़ होते-होते अभी तो बहुत ही दृढ़ हो गयी है और वह इसी तरह रहेगी—ऐसी मैं निश्चित कहती हूँ, विश्वासपूर्वक कहती हूँ। जीवन के अन्त तक यह दृढ़ता एक ही प्रकार की रहेगी।

मैं करांची में, बहिन के घर थी, तभी से-बचपन से ही-मुझे दीक्षित होने के भाव थे। बन्धु! जैसे आपका चित्त बचपन से ही वैरागी था, आपको संसार में रहना नहीं सुहाता था; वैसे मुझे भी बचपन से दीक्षा अंगीकृत करने के भाव थे। मेरे भाव की बात, मैंने अपनी एक सहेली को कही थी। धीरे-धीरे मेरी दीक्षा लेने की बात, हम रहते थे उस मकान में और करांची में कितनी ही जगह फैल गयी और कई लोग मुझ पर नाराजगी दिखाने आये, परन्तु मेरे भाव अडिग थे। वढ़वाण आने के पश्चात् गोराणी (स्थानकवासी साध्वी) में मैंने कुछ विशेष देखा नहीं। अन्तर के भाव अन्तर में रहे। अब तो पूज्य कानजी महाराज जैसे गुरु मिले; अब तो भव का अभाव कैसे हो; यही भावना होने से करांची में रहना मुश्किल हो गया है।

लि.

बहिन चम्पा के वन्दन

☆☆☆

वढ़वाण,
श्रावण, वि. सं. 1987
(ई.स. 1931; उम्र 17 वर्ष)

पूज्य भाभी सुशीला,

इसलोक और परलोक में परम आत्मिक सुख प्राप्त करो, ऐसा मेरा शुभाशीष।

मेरे भाई के दोनों पत्र मिले। पढ़कर बहुत ही आनन्द हुआ; परन्तु अभी आपका पत्र नहीं मिला, जिससे आज पत्र लिखने बैठी हूँ। आपको पत्र लिखने की निवृत्ति नहीं मिलती होगी, या तो आलस (प्रमाद) होती होगी; परन्तु कभी निवृत्ति लेकर पत्र लिखो तो अच्छा। आप यहाँ थी, तब तो कहती थीं कि मैं अवश्य पत्र लिखूँगी, परन्तु वहाँ जाने के बाद पत्र क्यों नहीं लिखती; वह बताना।

अहा, भाभी! कर्म की विचित्रता तो देखो! कहाँ आप, कहाँ मैं, कहाँ बड़े भाभी, कहाँ बड़ी बहन; सभी अलग-अलग जगह में हो गये। मेरे भाई को सूरत नहीं जाना था, फिर भी कर्म उसे धक्के मारके ले गया। सारा जगत कर्म का नचाया नाच रहा है।

भाभी! क्या लिखना और क्या नहीं लिखना, उसकी कुछ समझ नहीं आती। एक साथ बहुत से विचार स्फुरायमान होते हैं, उसमें से क्या लिखूँ और क्या नहीं लिखूँ?

अहा, भाभी! हमने थोड़े दिन तो बहुत आनन्द किया। हम आमने-सामने प्रश्न पूछते, उसका बुद्धि अनुसार निर्णय करते थे। ऐसे आनन्द के दिन फिर कब आये? हे प्रभु! ऐसे आनन्द के दिन जल्दी देना।

भाभी, (आप) दोपहर को सामायिक करती होंगी, 'आत्मसिद्धि' शास्त्र सीखती होंगी, पन्द्रह द्रव्य चालू रखे होंगे, सत्संग की खोज में होंगी। थोड़ा-थोड़ा पुरुषार्थ करके निमित्ताधीन वृत्ति को, निमित्तों में मिश्रित नहीं होने देना।

मैं, आपको थोड़े प्रश्न पूछती हूँ, उसका उत्तर देना। इन प्रश्नों की स्पष्टता बहुत बार हो चुकी है, परन्तु आपको वे याद हैं या नहीं? यह जानने के लिये पूछती हूँ—(1) तीर्थंकर और केवली में क्या अन्तर है? (2) अरिहन्त और सिद्ध में क्या अन्तर है? (3) तीर्थंकर और अरिहन्त में क्या अन्तर है? (4) पंच परमेष्ठी में से जन्म-मरण कितने करते हैं और कितने नहीं करते? इतने प्रश्नों का उत्तर निवृत्ति के समय लिखना।

भाभी! आपका अथाग प्रेम विस्मृत नहीं होता। धर्मध्यान में वृद्धि करना। मेरे भाई का स्वास्थ्य अच्छा होगा।

☆☆☆

वढ़वाण

(वि. सं. 1987, ई.स. 1931;

उम्र 17 वर्ष)

परम पूज्य बड़े बन्धु,

आपका पत्र मिला। पढ़कर हकीकत जानी। आप हमारे पत्र का इन्तजार करते होंगे, परन्तु हमें पत्र लिखने का ज्यादा समय नहीं मिलता है। पूज्य कानजीमहाराज ने अमरेली में जो प्रवचन किया था-वह 'सुन्दर वोरा' के उपाश्रय में, पढ़ने में चल रहा है। अन्दर से सुन्दर न्याय निकलते

हैं। पुरुषोत्तमदास बहुत सुन्दर न्याय निकालते हैं। उपाश्रय में बहुत रस और आनन्द आता है, किन्तु वह रस एवं आनन्द क्षणिक है। अन्दर से कुछ वर्तन में रख सकें, तो अच्छा।

अनादि से अज्ञानता से भटके, देहबुद्धि घटी नहीं। यदि देहबुद्धि घटे तो कुछ काम आये – ऐसा है। देह के अन्दर जो अरूपी ज्ञानशक्ति रही है; वह ही आत्मा है। वह देह से न्यारी वस्तु है।

संसार से उस पार आत्मा का स्वरूप रहा है। उसको प्राप्त करने का उपाय कुछ अलग होना चाहिए। यह धर्म ऐसा क्यों कहता है ? वह धर्म ऐसा क्यों कहता है ? उसकी समझ शुद्ध बुद्धि बिना नहीं हो सकती। अन्दर में उतरकर, 'प्रतिपक्ष रही हुई वस्तु यह जड़ है' और 'यह चैतन्य है' ऐसे एकदम विभाग करने के बाद ही, दूसरे धर्म क्या कहना चाहते हैं, वह समझ में आता है। भले ही वह अभी सम्यक्दशा तक न पहुँचा हो, फिर भी (भेद) कर सकता है।

बस, हृदय में बहुत लिखने के (भाव) हैं, तथापि नहीं लिखती हूँ, क्योंकि चाहे जितना बोलें-लिखें पर कुछ (अन्तर में) प्राप्त करें, तब कार्यकारी है—ऐसा है। छह मास में नहीं मिला, वह प्राप्त कर लेना, यह ही सीख है।

पत्र लिखते समय आत्मा (मन) उपाश्रय में है, अत: बराबर नहीं लिखा गया है।

आत्मा अनन्त, उसके भाव अनन्त, वे पत्र में कैसे आलेखित किये जायें ? आपने मुझे पूछे हुए प्रश्नों का निर्णय मैंने किया है; परन्तु पत्र लिखने का अवकाश नहीं है। आत्मा है ही, उसका मुझे निर्णय है, यह

निश्चित मानना। अभी मेरे में कुछ नहीं है, जो है वह है, बाकी कुछ नहीं। बस इतना ही। पत्र लिखना।

लि.
बहिन चम्पा के वन्दन

☆☆☆

वढ़वाण, वि.सं. 1987
(ई.सं. 1931, उम्र 17 वर्ष)

परम पूज्य बड़े भाई,

आपका पत्र मिला, पढ़कर बहुत आनन्द हुआ। मेरे पहले के पत्र की विचारेरेणी उलझन भरी थी। उसका कारण – यह विषय अति कठिन है और अभी मैं बहुत विचार भी नहीं करती हूँ, प्रमाद हो जाता है। एक बजे से तीन बजे तक मैं उपाश्रय में बैठती हूँ, शाम को प्रतिक्रमण करने जाती हूँ, तो वापस आठ–नौ बजे आती हूँ। आने के पश्चात् बातों में और पढ़ने में थोड़ी रात जाती है, बाकी का समय काम करने में जाता है। शिथिलता काफी आ गयी है, प्रमादपना बहुत आ गया है। वांकानेर में बहुत प्राप्त किया था। श्रीमद् राजचन्द्र, यथार्थ ही लिखते हैं कि —'एकान्त में जितना संसार क्षय होनेवाला है, उसका सौवाँ भाग भी कुटुम्बरूपी काजल की कोठरी में नहीं होगा'।

क्या यह जगत ? मैं कौन हूँ ? आप कौन हैं ? मेरी भाभी कौन हैं ? देह में ही अपने को 'मैं'पना रहा करता है। इस देह की एक बार श्मशान में राख होगी ही और आत्मा तो कहाँ चला जायेगा, फिर भी देह पर

ममत्वभाव कहाँ कम है ? ऐसे ही ऐसे इतने वर्ष व्यतीत हो गये और बाकी रहे वर्ष बीतते क्या देर लगेगी ? ऐसे ही ऐसे अनन्त काल चला गया तो यह मनुष्यदेह जाते क्या देर लगेगी ? फिर भी आँख कहाँ खुलती है ? सत्य वस्तु क्या है, उसका कहाँ भान है ? 'यह देह जो अनित्य है, उसको' प्रिय करना है ! धर्म... धर्म पुकाराना है, समकित... समकित पुकारना है, पुरुषार्थ कुछ करना नहीं है, बैठे-बैठे कोई समकित दे तो ले लेना है !

आत्मिक सुख तो कोई अलग ही वस्तु है, उसकी पहचान नहीं हुई। अरे ! गन्ध तक नहीं आयी और ज़हर को अमृत माना है। आत्मा के सुख को पुद्गल के सुख जैसी कल्पना की है। वह सुख पुद्गल से अतीत है, वचन से अतीत है, कल्पना से अतीत है। वह सुख—पौद्गलिक सुख में आनन्द माननेवालों के सामने—छलका दिया जाये, परन्तु 'उस सुख का स्वाद', 'वह आनन्द', उसे नहीं आता। पौद्गलिक सुख में आनन्द माननेवालों को उस सुख की कीमत नहीं होती। जो आत्मा पौद्गलिक सुख से थका हो, वह सुख जिसे मिथ्या ही भासित हो तो उसे वह अमृत पिण्ड मिलता है, उसकी कीमत भी उसे होती है।

आप लिखते हो कि 'तुमने तो बचपन में ही समकित का नाम सुना' परन्तु नाम सुना, उससे क्या हुआ ? नाम तो बहुत बार सुने। हमने पूर्व के पुण्य ऐसे (इकट्ठे किये) कि हमारे लिये वस्तु तैयार ही है। पूज्य कानजीमहाराज जैसे महात्मा का समागम, श्रीमद् राजचन्द्र जैसे महान आत्मा के पुस्तक आदि निमित्त तैयार हैं; फिर भी अपने पुरुषार्थ की ही कमी है। 'मैं आत्मा और यह जड़' ऐसा मुँह से बोलते रहना है, परन्तु श्रद्धा

में तो शून्य! 'मैं आत्मा और यह जड़' उतनी भी अन्तःकरणपूर्वक सच्ची श्रद्धा हो और जड़ में एकरूप होते आत्मा संकोच पाये तो उदासीन हो, फिर भी (वह) व्यवहार से श्रद्धा कहलाती है और आगे बढ़ने पर निश्चय समकित प्राप्त हो सकता है।

इसको तो (अभी) पुद्गल में तन्मय रहना है। पौद्गलिक सुख भी चाहिए और आत्मिक सुख भी चाहिए, वह कहाँ से मिले? जिसको ऐसा लगे कि पौद्गलिक सुख झूठा है; सच्चा सुख तो इससे अलग होना चाहिए। उसे प्राप्त करने की चटपटी होती है, उसे प्राप्त होता है। उस सुख के लिये, वह रोता (बेचैन रहता) है। हम तो देह का सुख रखकर आत्मिक सुख लेने जाते हैं, वह कहाँ से मिले?

अहा जीव! क्या तेरी मूढ़ता! क्या तेरी विभावदशा!

प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध, और रसबन्ध—उसकी समझ कर्मग्रन्थ में भी है।

जीव अनन्त काल से झूठे आग्रह और मान के कारण भटका है, नहीं तो ऐसी दशा नहीं होती।

बस यह ही—

लि.

बहिन चम्पा के सविनय प्रणाम

☆☆☆

वांकानेर, संवत् 1987 (ई.स. 1931, उम्र 17)

(पूज्य भाभी)

पूज्य कानजीमहाराज का प्रवचन सुनने के पश्चात् हृदय में ऐसे अच्छे भाव उठते थे कि उनका क्या वर्णन करूँ ? ओ प्रभु ! मुझे सदा पूज्य कानजीमहाराज का और धर्मी का सत्संग हो-ऐसा मैं चाहती हूँ।

जब तक 'अच्छे निमित्त से चढ़ा जायेगा और बुरे निमित्त से गिरेंगे' ऐसी दशा है, तब तक आत्मा का कल्याण होना दुर्लभ है। (कैसा भी बुरा निमित्त हो, परन्तु हृदय की गहराई से धर्म का प्रेम जायेगा नहीं।)

आप सोचते होंगे कि, 'मैं यहाँ अकेली, धर्म का वातावरण भी नहीं', परन्तु बेचैन मत होना, मैं भी यहाँ अकेली ही हूँ, यहाँ भी धर्म का वातावरण नहीं है। जीव अकेला आया और अकेला ही जायेगा, तो फिर जब उसे परवस्तु का वियोग होता है, तब क्यों बेचैन होता है ? परन्तु मुझे तो अभी धर्मी से दूरपना है, निमित्ताधीन वृत्ति है, तब तक निमित्त की आवश्यकता है। पोरबन्दर में पूज्य कानजीमहाराज द्वारा उपदेशित धर्म की तल्लीनता में, मेरे दिन बीतते थे। विचार भी ये ही, स्वप्न भी ये ही। पोरबन्दर से आये, उस दिन, रात को भी पूज्य कानजीमहाराज के स्वप्न आते थे। दूसरे दिन से सांसारिक प्रवृत्तियों ने घेर लिया, जिससे आधे विचार प्रवृत्ति के और आधे धर्म में लवलीन रहनेवाले रहे, परन्तु स्वप्न में अन्तर हो गया। मुनि महाराज के स्वप्न के बदले सांसारिक प्रवृत्तियों के स्वप्न आने लगे। जितनी आजीविका के लिये प्रवृत्ति होती है, उतनी ही आत्मा के लिये होगी, तब धन्यता होगी। यदि वस्तु समझ में आये कि 'इस वस्तु का स्वरूप ऐसा है और उस वस्तु का स्वरूप ऐसा है', तब तो आत्मा

के लिये प्रवृत्ति हो। किन्तु जानने की सच्ची जिज्ञासा-पिपासा ही जगी नहीं हो, तो समझ में नहीं आता।

पूज्य कानजीमहाराज का व्याख्यान मैंने लिखा है। दूसरा, आप लिखते हो कि, मुझे एक प्रश्न पूछो - मेरे भाई ने 'आत्मसिद्धि' शास्त्र के अर्थ वढ़वाण में समझाये थे; तो मैं पूछती हूँ कि—

प्रश्न-(1) देह और आत्मा भिन्न है, उसकी सिद्धि कैसे होगी? क्योंकि वह आत्मा तो हमें दिखने में नहीं आता, तो 'आत्मसिद्धि' शास्त्र में जितने तर्क हैं, उसके अर्थ लिखकर भेजना।

प्रश्न-(2) यदि देह और आत्मा अलग है तो वह आत्मा नित्य है, उसका मुख्य तर्क क्या है? बहुत लोग कहते हैं कि 'आत्मा अनित्य है, क्षणिक वस्तु है। इसलिए उसकी नित्यता का तर्क 'आत्मसिद्धि' शास्त्र में है; उसका अर्थ (श्रीमद् राजचन्द्र) पुस्तक में देखे बिना लिखना।

'आत्मसिद्धि' शास्त्र पूरा किया होगा। सामायिक करते होंगे। प्रतिक्रमण सीखते होंगे। बस यह ही, पत्र का उत्तर तुरन्त देना।

मेरे भाई की तबीयत अच्छी होगी, हम सब साथ में हों तो कितना अच्छा! पूज्य कानजीमहाराज के सत्संग में वैराग्य को पुष्टि मिलती थी। वैराग्य का सिंचन होता था।

लि.
आपको हर घड़ी याद करनेवाली
बहिन चम्पा के पायवंदन।

☆☆☆

वांकानेर, संवत् 1987
(ई.स. 1931, उम्र 17)

पूज्य भाभीश्री !

आपका पत्र मिला। पढ़कर हकीकत जानी। आपने प्रश्नों के उत्तर लिखे हैं, वे सही हैं। ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम आपको थोड़ा कम होने के कारण पुरुषार्थ करके ज्ञान को बढ़ाना।

हमने सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया है। आपने भी किया होगा। आज तक मेरे से कुछ अविनय, अपराध, विराधना हुई हो तो, अन्त:करणपूर्वक पुन:-पुन: क्षमा याचती हूँ।

आपको आश्विन महीने में वांकानेर आना है या पोरबन्दर जाना है या दालोद जाना है ? आपके पिताश्री वढ़वाण आये थे और आश्विन मास में आपको दालोद ले जाने का कहते थे, तो आपको ज्ञान आवृत करने दालोद जाना है या ज्ञान विकसित करने पोरबन्दर जाना है ? जैसी आपकी इच्छा।

दूसरा, पुण्य बाँधकर, मनुष्य-आयुष्य बाँधकर, अपने साथ भतीजेरूप सम्बन्ध बाँधकर, एक आत्मा ने यहाँ जन्म लिया है। बड़े भाभी और उस पुण्यवन्त आत्मा का स्वास्थ्य अच्छा है।

पत्र जल्दी लिखना।

लि.
बहिन चम्पा के पायवन्दन

☆☆☆

वि.सं. 1987

(ईस्वी सन् 1931)

परम पूज्य भाई,

'यह जगत क्या है ? और उसकी विचित्रता का कारण क्या है ?' उसके विषय में लिखकर इसके साथ भेजा है। उसमें जो भूल हो, वह जरूर लिखकर भेजना।

इस लेख में दूसरी बहुत बातें लिखी हैं, परन्तु ऐसा लिखने की मुझे बहुत इच्छा हुई; अत: लिखा है। भूल जरूर लिखकर बतलाना।

इस आत्मा को, अभी के भाव अनुसार, एकान्त प्रिय है, सत्य की व समकित की अभिलाषा है। आत्मा का अस्तित्व, मोक्ष और मोक्ष के उपाय आदि, गहन विचार करते, इस लेख में लिखे अनुसार ज्ञात होता है। अभी आत्मिक परिवर्तन नहीं हुआ है। उसके अनुसार करने की अभिलाषा है। हृदय से सच्चा निर्णय करें तो ही, सच्ची श्रद्धा कहलाती है। सिद्धान्त के कहने पर श्रद्धा रखनी, वह सच्ची श्रद्धा नहीं कहलाती है। ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम करने में चित्त बहुत लग गया है, फिर भी सांसारिक प्रवृत्ति करते समय विचारों को एक ओर रखना पड़ता है।

आपके सत्संग के बाद जानकारी बढ़ती चली है। वह जानकारी होने पर मुख्य निमित्त-कारण आप होने से मुझ पर आपका उपकार है। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। सांवत्सरिक सम्बन्धी क्षमा याचती हूँ। बस इतना ही।

लि.

बहिन चम्पा के पायवन्दन

वि.सं. 1987
(ईस्वी सन् 1931)

'किस मार्ग पर हूँ'

(पूज्य बहिनश्री द्वारा लिखित लेख)

'मैं किस मार्ग पर हूँ' वह मैं समझ नहीं सकती। आत्मा को अपने गुण-दोष देखने का अभ्यास ही नहीं है। दूसरे के दोष देखने का जीव को अनादि काल से अभ्यास है। यदि किसी जीव को ऐसा पूछा जाये कि, 'फलाना व्यक्ति किस मार्ग पर है ? वह बताओ' तो, जल्दी कह देता है। परन्तु कभी अन्तर में उतरकर विचार नहीं किया कि, 'मैं किस मार्ग पर हूँ ?' यहाँ मेरी दशा ऐसी है कि-मुझे एकबार निवृत्ति लेनी है, खोज-खोजकर दोष निकालना है, मोक्ष का बीज प्राप्त करना है; परन्तु कब करूँगी ? एक बार... एक बार... एक दिन कहते-कहते सारी जिन्दगी तो नहीं चली जाएगी ना ? यहाँ प्रमादावस्था है, उसके निमित्त मिलते, शिथिलता होने से, सत्यासत्य का विचार नहीं हो सकता। जिससे हृदय की गहराई में दु:ख होता है। थोड़े दिन पहले हृदय व्याकुल हो गया था और ऐसा होता था कि हे जीव ! तू सत्य कब खोजेगा ? ऐसा विचार आने से दु:ख होता था; परन्तु बुद्धि अल्प होने से, प्रमादावस्था होने से, सत्यासत्य का विचार कुछ स्फुरायमान नहीं हुआ, और उससे हृदय में व्याकुलता हुई, फिर वापस निमित्त मिलने से, आनन्दित हो गया, ऐसी समय-समय की स्थिति है।

मुझे सत्य प्राप्ति की खटक तो भीतर-भीतर रहती ही है, परन्तु वह

यथार्थ वेदन होगा या भ्रान्तिरूप–वह मैं समझ नहीं सकती हूँ। हे प्रभु! मेरा यह वेदन भ्रान्तिरूप हो तो यथार्थ वेदन उत्पन्न कराओ, सत्य को समझाओ।

यहाँ जीव को एकान्त सुहाता है। किसी को एकान्त दु:खदायक लगता है। मुझे तो एकान्त सुखदायक लगता है। सामान्य मानव के साथ मेरी दशा की तुलना करती हूँ तो, मात्र 'धर्म की रुचि हुई है' उतनी ऊँची है। ज्ञानी पुरुष के साथ मेरी दशा तुलना करने पर, 'मैं एक पामर पशु हूँ' ऐसा मुझे लगता है। बहुत बार आत्मा प्रमाद सहित हो जाता है।

यहाँ प्रमादावस्था है। कुछ महीने पहले मेरी दशा अभी की तुलना में ऊँची थी; आत्मा को पुरुषार्थ करना जरा सूझता था; कषायों को जीतता था। अभी प्रमाद है। अनेक बार सत्यासत्य की उलझन के विकल्पों में यह जीव उलझ जाता है। ऐसी समय–समय की स्थिति है।

☆☆☆

(वि.सं. 1987)

(ईस्वी सन् 1931)

किस मार्ग पर हैं ?

(पूज्य बहिनश्री द्वारा लिखित लेख)

चौदह–पन्द्रह वर्ष की उम्र में मेरी दशा ऐसी थी कि – मनुष्यभव पाना दुर्लभ है। सत्य, ब्रह्मचर्य, दया आदि पालना चाहिए, वह मैं समझ सकती थी; आत्मार्थी पुरुषों के चरित्र सुनकर वैराग्य उत्पन्न होता था।

चौदह–पन्द्रह वर्ष की वय में मुझे धर्म रोपनेवाले का सत्संग मिला।

तब मेरे भाव ऐसे थे कि—आत्मार्थियों के चरित्रों को सुनकर वैराग्य उत्पन्न होने लगा। बहुत बार संयम लेने के भाव होते थे, परन्तु संयम अर्थात् क्या? संयम लेनेवाले को कैसा चारित्र पालना चाहिए, वह कुछ समझ नहीं सकती थी। परन्तु इतना तो अवश्य था कि धर्म में मुझे रुचि हो गयी; वह पूर्वजन्म के संस्कार थे। ऐसे करते-करते स्वदेश में आये। वहाँ पूर्व के पुण्ययोग से सत्संग मिला। आत्मा क्या? पुण्य क्या? पाप क्या? यह सब कहनेरूप जाना। अभी मेरी दशा ऐसी है, वहाँ क्या करूँ? निश्चयपूर्वक क्या लिखूँ कि—'हम किस मार्ग पर हैं'? एकान्त से कुछ भी नहीं लिख सकती। इसलिए मैं तो पुण्य के पथ पर, पाप के पथ पर तथा सत्य प्राप्त करने के पथ पर हूँ। जब शुभ विचार आते हैं, वह पुण्य बंध है, प्रमादप्रेरित आत्मा हो तब, पाप का बंध है। हे प्रमाद! तू जा, हे पुरुषार्थ! तू प्रकट हो।

☆☆☆

रत्नकणिका

(पूज्य बहिनश्री के सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व के लेखों में से)

आत्मा ज्ञानस्वभावी है, वह जानता है; देह जड़ है, वह जानता नहीं है। इसलिए आत्मा और देह एक नहीं है, भिन्न है। ऐसे आत्मा का देह से भेदज्ञान करना।

जैसे कालीजीरी की चूरी में रखा हुआ मिश्री का टुकड़ा ऊपर-ऊपर से कडुआ होता है, परन्तु भीतर से कडुआ नहीं होता; वैसे क्रोधभाव में परिणमित आत्मा ऊपर-ऊपर में क्रोधी होता है; परन्तु अन्दर में क्रोधी नहीं होता अर्थात् मूल क्षमा स्वभाव वैसा का वैसा ही रहता है। इसलिए

आत्मा मूल स्वभावतया क्रोध से भिन्न है। ऐसे आत्मा का क्रोध से भेदज्ञान करना।

(व्यक्तिगत नोंध)

(वि.सं. 1988, ई.स. 1932)

इस प्रकार की प्रतिज्ञा मैंने कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक ली है। मैंने कार्तिक शुक्ल 15 तक शक्कर की तथा साकर न खाने की प्रतिज्ञा ली है। चैत्र शुक्ला 14 से कार्तिक शुक्ला 15 तक दो बार खाने की प्रतिज्ञा ली है, बीच में कुछ भी न खाना—ऐसी प्रतिज्ञा ली है। आम के दिनों में पके आम न खाने की प्रतिज्ञा है।

☆☆☆

वि. सं. 1987-88

(ई.स. 1931-32, उम्र 17-18वर्ष)

सत्संगयोग्य श्री सुशीलाभाभी!

अभी आपका पत्र नहीं है तो लिखना।

भाभी! आप लिखती हैं कि लम्बे पत्र लिखकर धर्म का विवेचन करना।

आपने लिखा है; इसलिए उदीरणा करके लिखती हूँ।

भाभी! आज-कल करते-करते बहुत दिन बीत गये, अरे! अनन्त काल बीत गया, परन्तु सत्य सुख नहीं मिला। क्या वह कम खेददायक है? यह जगत क्या? इस जगत की रचना क्या? आत्मा क्या? पुनर्जन्म क्या? ये सब अनेक भाँति के विकल्प क्या? परवस्तु क्या? इन सबके विचार

करते हुए घबराहट हो जाती है। जिन्दगी नीरस लगती है, हृदय रोता है; परन्तु वह रोना गलता है। अनन्त काल से अनन्ती वेदना सहन की, तथापि उकताहट क्यों नहीं लगती ? सिहरन क्यों नहीं होती ? सत्य की तड़प क्यों नहीं लगती ? संसार में एकान्त दु:ख क्यों नहीं लगता ? अभी संसार में एकान्त दु:ख इस जीव को लगा ही नहीं; नहीं तो संसार के पीछे इतना ज्यादा लगा नहीं रहता।

अहा जीव ! अहा प्रभु ! एक दिन भी तुझे प्रभु के वियोग में दु:ख हुआ है ? भीतर से दर्शन के लिये हृदय रोया है ? प्रभु का वियोग तुझे दु:खदायक लगा है ? अरे रे ! अभी तो इनमें से कुछ भी नहीं है, वहाँ प्रभु कहाँ से मिले ? ऐसे ही ऐसे क्या अनन्त काल भी चला जायेगा ?

प्रभु ! तेरे दर्शन का पहला सोपान उदासीनता है। संसार की ओर उदासीनता आने से प्रभु के दर्शन होंगे। सत्सासत्य का निर्णय हो तो मुक्ति का मार्ग मिलता है।

अभी मुझमें तो कुछ भी नहीं है। अभी तो संसार प्रिय लगता है, नहीं तो ऐसा नहीं होता। भाषा से बोलना, पत्र में लिखना, वह बेकार की बातें करने जैसा है।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। नव तत्त्व सीखती होंगी। आध्यात्मिक विचार कैसे चलते हैं ? वह लिखिएगा। पत्र जरूर लिखना।

लि.

बहिन चम्पा के वन्दन

☆☆☆

वांकानेर (वि.सं. 1989,
ई.स. 1933, उम्र 19 वर्ष)

.....।

आपकी विशेष जिज्ञासा के कारण यह पत्र लिखती हूँ। मैंने जामनगर से आने के पश्चात् पूज्य कानजीमहाराज का प्रवचन लिखा है।

भव्य-अभव्य की चिन्ता अभी नहीं करना। भव्य होगा, वह मोक्ष प्राप्त करेगा ही, ऐसा कुछ नहीं है। भव्यजीव में मोक्ष पाने की योग्यता है, परन्तु पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हो। बिना पुरुषार्थ के तीन काल में मोक्ष मिल जाये-ऐसा नहीं है। अनन्त चौथे काल इकट्ठे हो जाये, फिर भी बिना पुरुषार्थ के अपने आप मोक्ष नहीं होगा। अनन्त काल तक भव्य-अभव्य दोनों रहेंगे। उसका कारण यह है कि भव्य जीव पुरुषार्थ नहीं करते; अत: मोक्ष नहीं पाते। इसलिए अभी तो हमें पुरुषार्थ ही करना योग्य है। जैसे बने वैसे संसार की प्रीति कम करना। ऐसा किये बिना दूसरा उपाय ही नहीं। वैसा किये बिना इस पर्यटन का किनारा नहीं आयेगा। यदि हम इस पर्यटन से वास्तव में थके हों और 'अब बहुत हुई' ऐसा लगता हो और हम विश्रान्ति लेना चाहते हों, तो पुरुषार्थ किये बिना, गहरी तमन्ना जगाये बिना, उदासीनता बिना और वैराग्य की धारा के बिना तीन काल में आत्मस्वरूप प्राप्त नहीं होगा।

अनादि काल से जीव सुख-सुख ऐसे छटपटाता रहता है, सुख के पीछे तरसता रहता है। उस सुख का सच्चा स्वरूप सत्पुरुष ही जानते हैं। जीव 'जड़ में से सुख आता है', ऐसा उल्टा मानकर बैठ गया है। भ्रान्ति में पड़ा है; परन्तु वह सुखगुण या आनन्दगुण अपना (स्वयं का) है, अपने में

से ही प्राप्त होनेवाला है। अनन्त आनन्दमय या सुखमय स्वयं ही है। अनादि काल से अज्ञानी जीव संसार में भ्रमण करते-करते, सुख की खोज में दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दु:खों को सहन करता रहा है। कभी सत्य सुख दिखानेवाले मिले तो, शंका रखकर अटक गया; कभी सच्चे सुख दिखानेवाले की अवगणना करके अपना स्वरूप प्राप्त करते हुए अटक गया; कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका; कभी पुरुषार्थ किया तो थोड़े पुरुषार्थ के लिये वहाँ से अटका और गिरा।-इस तरह जीव अपना स्वरूप प्राप्त करते हुए अनन्त बार अटका। पुण्योदय से यह देह पाया, यह दशा पायी, ऐसे सत्पुरुष मिले; यदि अब पुरुषार्थ नहीं करे तो किस भव में करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा संयोग और सच्चा आत्मस्वरूप बतानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे।

आपका तो निरुपाधिमय जीवन है। हजारों उपाधियों के बीच भी पुरुषार्थ करके तिर जाये-ऐसी आत्मायें हैं, तो अपना तो निरुपाधिमय जीवन है। क्या इस जीव ने कभी पुरुषार्थ करने का निर्धार किया है? अभी भी उसे परिभ्रमण प्रिय लगता होगा? वास्तव में, यदि ऐसा न हो तो पुरुषार्थ किये बिना वह चैन की श्वास न ले। उसे अपने स्वरूप पर श्रद्धा नहीं है, उस पर प्रेम नहीं है, परवस्तु पर प्रेम है, परिभ्रमण की थकान नहीं है, 'मैं बँधा हुआ हूँ, मेरा स्वरूप अलग है' ऐसा उसे ख्याल नहीं। मूर्ख भी बन्धन की इच्छा नहीं करता, फिर भी यह जीव बन्धन की इच्छा करता है, यह एक आश्चर्य है।

सारा संसार सुख की इच्छा करता है। सुखी, सुख की इच्छा नहीं करता, दु:खी, सुख की इच्छा करता है। सुखी को तो ऐसा लगता है कि,

'हम अब सुखी हो गये, अब हमें कोई इच्छा नहीं।'

अनन्त काल से बहुत सद्गुरु मिले और बहुत कहा, परन्तु जीव कहाँ मानता है ? श्रद्धा कहाँ लाता है ? जीव-कर्म का संयोग अनादि है। उसमें पहला और पीछे कुछ नहीं। वह पहले बँधा हुआ नहीं था और बाद में बँध गया—ऐसा नहीं है; परन्तु उनका सम्बन्ध अनादि है।

यह जीव अनादि काल से परिभ्रमण से क्यों नहीं थकता ? क्या उसे विश्रान्ति लेनी नहीं सुहाती होगी ?

पुरुषार्थ बिना किये कर्म टूटेंगे नहीं। हे जीव ! बिना पुरुषार्थ किये कोई छुटकारा नहीं। बिना पुरुषार्थ किए इस पर्यटन का किनारा नहीं आयेगा। वैराग्य और समभाव का बल बढ़ाना। अभी मुझे और आपको-सबको-यह ही कर्तव्य है।

कोई पुरुष बन्धन को नहीं इच्छता और इस आत्मा को बन्धन की इच्छा है—यह एक आश्चर्य है।

पूज्य कानजीमुनि के दर्शन करनेयोग्य हैं। मैं बहुत प्रमादी हूँ, कुछ करती नहीं हूँ। मेरी कीमत ज्यादा नहीं आँकना।

लि.

बहिन चम्पा के वन्दन

☆☆☆

(वि.सं. 1987-88, ई.स. 1931-32)

(उम्र वर्ष 17-18) वढ़वाण

(पूज्य बहिनश्री के पत्रों में से)

मैं वैरागी जीवों का उपदेश पढ़ती हूँ। ऐसे जीवों का वैराग्य वास्तव में पुरुषार्थ जगाये - ऐसा है। हम सबको तो सयानी सयानी बातें करना आता है।

☆

पूज्य कानजीमहाराज का संवेग-निर्वेग का प्रवचन (व्याख्यान) तो अद्‌भुत था। वह ज्ञान की उन्नतिक्रम की कला का ज्ञान कराता है।

☆

आत्मानुभव जैसी वस्तु है, परन्तु जिसे संसार खारा लगे और संसार में जिसे कहीं भी सुख न लगे, उसे उसकी कीमत होती है। अभी हम तो संसार को प्रिय करके बैठे हैं और आत्मिक सुख चाहिए, तो कहाँ से मिले? संसार सच्चा है या झूठा-उसका निर्णय करें और अन्तर से ऐसा लगे कि संसार में एकान्त दु:ख ही है, तो फिर सुख की शोध में जाने की तड़प जगे। विचार करने पर संसार हलाहल विष जैसा जगे, तो फिर अमृत कहीं होना चाहिए-ऐसी श्रद्धा हो। ऐसा होता है कि - ओ प्रभु! संसार दु:ख से भरपूर है, अत: इससे सुख अन्य जाति का होना चाहिए। उसकी खोज करने के पश्चात् तो हृदय रोने लगता है। महापुरुषों को संसार झूठा लगा था, इसलिए प्रभु के दर्शन की इतनी तड़प लगी थी।

☆

पहले हम सबको विचार करना चाहिए कि संसार में दु:ख है या सुख? संसार में जिसे सुख लगे, उसे आत्मिक सुख बहुत दूर है। जिसको

संसार हलाहल विष जैसा लगा, उसको आत्मानुभव निकट है। अहा! अनादि काल का आयुष्य इस ही तरह व्यतीत हुआ, तो यह आयुष्य बीतते कितनी देर ? हम तो प्रमादी होकर बैठे हैं। मैं बहुत प्रमादी हो गयी हूँ। मेरा सब—ध्यान और सर्व-अभी बहुत इधर-उधर हो गया है।

हम सब तो समकित... समकित करते हैं, परन्तु योग्यता या पात्रता के बिना समकित कहाँ समाएगा ?

अभी मैं कुछ पढ़ती नहीं हूँ। (ऐसे ही ऐसे) इस ही तरह मनुष्यभव चला जानेवाला है ? अभी तो पन्द्रह वर्ष थे और थोड़ी देर में अठारह वर्ष हो गये तो फिर बीस या पच्चीस होते कितनी देर लगेगी ? (ऐसे ही ऐसे) इसी तरह जिन्दगी पूरी होनेवाली है ?

वि.सं. 1985 (ई.स. 1929) वर्ष के
परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में से

पूज्य बहिनश्री द्वारा ग्रहण किया हुआ

आत्मा ज्ञान आदि अनन्त गुणों से भरा है, अनुपम है; वह आत्मा देहातीत, वचनातीत, विकल्पातीत, निर्विकल्पस्वरूप है। वह आत्मा देह से, वचन से, विकल्पों से उस पार विराजित है; वहाँ अन्तर में, गहराई में जाये तो प्रकट होता है। उसे अन्तर से पहचान, अन्तर में जाकर अनुभव कर। वह ही करनेयोग्य है। (हे जीव! पुरुषार्थ करके, सबसे अलग होकर, आत्मा को पहचान।)

पूज्य बहिनश्री स्वानुभवप्राप्ति के पूर्व निज-प्रभुविरह से तीव्र वेदनपूर्वक गाते थे, उस गीत के कुछ पद

दूर कां प्रभु! दोड तुं, मारे रमत रमवी नथी;
आ नयनबंधन छोड तुं, मारे रमत रमवी नथी। .... दूर० १।

प्यासु परम रसनो सदा, शोधुं परम-रस-रूपने;
अनुभव मने अवळो थयो, ऐवी रमत रमवी नथी। .... दूर० २।

हुं तो सुधानो स्वादियो, चाल्यो सुधानी शोधमां;
त्यां झेरनो प्यालो मळयो, ऐवी रमत रमवी नथी। ....दूर० ३।

तुं आवीने उत्साह दे कां फेंक किरण प्रकाशनां;
आ लक्ष विण रखडी मर्यानी, रमतने रमवी नथी। ....दूर० ४।

हे तात! ताप अमाप आ, तपवी रह्या छे त्रिविधना;
ए तापमांही तपी मर्यानी, आ रमत रमवी नथी। ....दूर० ५।

नथी सहन करी शकतो प्रभु! तारा विरहनी वेदना;
हे देव! तुज दर्शन विना, मारे रमत रमवी नथी। ....दूर० ६।

नथी समज पडती हे प्रभु! कई जातनी आ रमत छे;
गभराय छे गात्रो बधां, मारे रमत रमवी नथी। ....दूर० ७।

होये रमत घडी बे घडी, बहु तो दिवस बे चारनी;
आ तो अनंता युग गया, ऐवी रमत रमवी नथी। ....दूर० ८।

त्रिभुवनपति! तुज नामना थाक्यो करी करी सादने;
सुणता नथी क्यम दासने, आवी रमत रमवी नथी। ....दूर० ९।

पूज्य बहिनश्री सम्यक्त्वप्राप्ति के पूर्व बहुत ही वेदनपूर्वक गाते थे वह गीत

कंचन वरणो नाह रे, मुने कोई मिलावो; कंचन०
अंजन-रेख न आंखन भावे, मंजन शिर पडो दाह रे; मुने। कंचन०

कौन सेन जाने पर मन की, वेदन विरह अथाह रे, मुने।
थरथर धूजे देहडी मारी, जिम वानर भरमाह रे; मुने। कंचन०

देह न गेह न नेह न रेह न, भावे न दुहा गाहा रे, मुने।
'आनंदघन' वहालो बांहडी झाले, निशदिन धरुं उमाहा रे; मुने। कंचन०

सम्यग्दर्शन प्राप्ति के पूर्व पूज्य बहिनश्री भावपूर्वक गाते थे वह काव्यपद

कायानी विसारी माया, स्वरूपे समाया एवा,
निर्ग्रन्थनो पंथ भव-अन्तनो उपाय छे।

संगत्यागी, अंगत्यागी, वचनतरंगत्यागी,
मनत्यागी, बुद्धित्यागी, आपा शुद्ध कीनो है।

सुखधाम अनन्त सुसन्त यही,
दिनरात रहे तद्ध्यान मही;
प्रशान्ति अनन्त सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वर ते जय ते॥

आज मंगळ मन्दिर द्वार खूल्यां

आज मंगळ मन्दिर द्वार खूल्यां, मंगळ द्वार खूल्यां रे;
स्वानुभूतिना स्वाद आज चाख्या, मंगळ द्वार खूल्यां रे।
हीरा-मोती-रत्नथी वधावुं भगवती मात,
परम सुभाग्ये पधारिया, आज आनन्द अति उभराय रे।
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (1)

ओगणीस वर्षे उल्लसी, आत्मलगन दिनरात,
वात गमे नहि विश्वनी, प्रभु पाम्ये ज होय निरांत रे,
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (2)

भाळया निज भगवान ने, चेतनघन अविकार,
आनन्दसागर ऊछळयां, अहो भवभ्रमण निस्तार रे
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (3)

ज्ञायकबाग महीं रमो, करो चिदामृतपान,
अप्रतिहत साधकदशा, झट बोलावे केवळज्ञान रे
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (4)

मति-श्रुत उदधि ऊछळयां, तुज हृदये जगमात,
सीमंधर-कुंदकुंदनी तमे लाव्या अलौकिक बात रे
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (5)

शीघ्र शीघ्र अविकल्पता, ध्रुव धामे धरी नेह,
सविकल्पे संभारतां-आ भरत छे के विदेह रे
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (6)

अनुभवभीनी स्पष्ट छे तलस्पर्शी तुज बाण,
'वचनामृत' ना पानमां डोल्युं आखुंय हिन्दुस्तान रे
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (7)

अमृतमीठी छांयडी, तारी अति सुखकार;
धर्मरत्न गुणमूर्ति छो, छो उपशमरस-अवतार रे
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (8)

झाझुं शुं कहुं माँ तने, द्यो दानेश्वरी दान,
शिवपुर साथे राखजो-ए पूरो अंतर अरमान रे
..... मंगळ द्वार खूल्यां रे। (9)

☆☆☆

(पूज्य भगवती बहिनश्री चम्पाबेन की निजानन्दवेदन सम्बन्धित नोंध)

आनन्द का दिन

वांकानेर, वि.सं. 1989
(शाम को लगभग 3.00 बजे)

चैत्र (गुजराती फाल्गुन) कृष्णा 10 को सोमवार दोपहर सामायिक में निजस्वरूप अनुभव में आया। अनन्त काल से नहीं समझ में आया स्वरूप समझ में आया। आनन्दसागर उछल रहे थे। वह स्वरूप आश्चर्यकारी व अद्‌भुत है। परम उपकारी परम प्रतापी सद्‌गुरुदेव को नमस्कार।

पूज्य बहिनश्री का सम्यक्त्व साधनाधाम (वांकानेर)

चैत्र (गुजराती फाल्गुन) कृष्णा दसवीं के दिन हुई मंगलकारी

स्वानुभूति सम्बन्धी पूज्य बहिनश्री की नोंध

चैत्र (गुजराती फाल्गुन) कृष्णा दसवीं का अपूर्व दिन

वांकानेर, सं. 1989

(वैशाख मास में लिखा गया)

स्वस्वरूप का लक्ष्य आते, चैत्र (गुजराती फाल्गुन) कृष्णा दसवीं, सोमवार को दोपहर में, ज्ञाताधारा की वृद्धि होने पर, उस तीव्रता से आकर उपयोग परलक्ष्य से छूटकर, अपने स्वस्वरूप में स्थिर होकर, चैतन्य भगवान उस स्वरूप का अनुभव करते थे। अपने निर्विकल्प सहज स्वरूप में खेल रहे थे, रमण कर रहे थे। अनुपम और अद्‌भुत ऐसे आत्मद्रव्य की महिमा कोई अपार है ! चैतन्यदेव आनन्द तरंगों में डोलते थे।

अहा ! अनन्त काल से छिपे हुए आत्मभगवान प्रकट हुए, उनका छिपा हुआ ऐसा अनुपम अमृतस्वाद वेदन में आया, अनुभव में आया।

हे श्री सद्‌गुरुदेव ! वह आपका ही प्रताप है।

अपूर्व आत्मस्वरूप प्रकट हुआ, वह परमकृपालु सद्‌गुरुदेव का ही प्रताप है ?

भारतखण्ड में अपूर्व मुक्तिमार्ग प्रकाशनेवाले परम उपकारी गुरुदेव को नमस्कार !

☆☆☆

वढ़वाण, वि. सं. 1989,
(ई.स. 1933, उम्र 19)

[भाई हिम्मतभाई !]

संसार दु:खमय है। इसलिए आत्मा को पुरुषार्थ करके उसमें से तार लेने की आवश्यकता है। प्रमाद करना योग्य नहीं है। जैनदर्शन सत्य है – ऐसा मैंने तो जाना है। तुम भी प्रमाद छोड़कर, वैराग्य बढ़ाकर विचार करोगे तो ऐसा ही जानने में आयेगा। प्रमाद कर्तव्य नहीं है।

लि.
बहिन चम्पा का वन्दन

☆☆☆

(उपरोक्त पत्र पढ़कर श्री हिम्मतभाई ने पूछा कि, 'बहिन! क्या तुझे समकित हुआ है ? उसके उत्तररूप में लिखे गये पूज्य बहिनश्री के पत्र में से)

वढ़वाण, वि.सं. 1989, चैत्र
(ई.स. 1933, उम्र 19)

भाई हिम्मतभाई !

इस आत्मा को परिभ्रमण का किनारा आ गया है..... ।

लि.
बहिन चम्पा का वन्दन

☆☆☆

(दिनांक 21-4-1933) वि.सं. 1989
चैत्र कृष्णा 12, शुक्रवार, सूरत

बहिन चम्पा,

पत्र पढ़कर मैं तो दिंग ही हो गया हूँ। कोई न कोई तो जागता ही रहता है-ऐसा जानकर हर्ष होता है। पंचम काल के अन्त तक शासन जीवित है। कहते हैं कि इस काल में सन्त मिलने दुर्लभ हैं। मैं तो सन्त को खोजने-मिलने-न गया, पर सन्त मेरे घर पधारे हों, ऐसा लगता है, इतनी दुर्लभताएँ प्राप्त हो गयी, फिर भी कुछ न हो तो किसका दोष ?

मेरी शंकाएँ क्या-क्या है, मैं कहाँ अटकता हूँ, मेरा स्वभाव, मेरी निर्बलताएँ-सब तेरी जानकारी से बाहर नहीं है। 'निशानी कहाँ बताऊँ रे, तेरो अगम अगोचर रूप'—ऐसे उत्तर से बहुत अधिक आशा में रखता हूँ। पत्र में ज्यादा लिखने की इच्छा नहीं होती है।

हो सके तो पत्र लिखना। लम्बा नहीं तो कम से कम छोटा लिखना, तो अच्छा।

लि.
हिम्मतभाई

☆☆☆

वि.सं. 1989 (ई.स. 1933)

पूज्य भाभीश्री,

चि. सुरेश का देह छूट जाने से खेद हुए बिना नहीं रहता, यह स्वाभाविक है; क्योंकि जिसे बचपन से पाल-पोसकर बड़ा किया, उसका अचानक देह छूट जाये; उससे बहुत ही धक्का लगे, परन्तु क्या करें ?

आयुष्य की दोर के आगे किसी का उपाय नहीं है। वह आत्मा बेचारा मनुष्यदेह प्राप्त करके, सभी अनुकूलता प्राप्त की, परन्तु कम आयु होने से मनुष्यदेह को साफल्य किये बिना चला गया। हमें भी एक बार यह छोड़कर चला जाना होगा। संसार में कोई किसी का नहीं है। संसार में कोई किसी की माता या पुत्र नहीं हो सकता; मात्र भ्रान्ति से सर्व कल्पित माना गया है। जगत में सर्व ज्ञानपिण्ड आत्मा ही रहे हैं। कोई उसके पुत्र या माता कहाँ से हो ? जीव ऐसे विपरीत राग-द्वेष करके, अपनत्व मानकर, संसार में परिभ्रमण करता है। जो वस्तु गयी है, वह वस्तु वापस आनेवाली नहीं है। मात्र जीव आर्तध्यान करके एवं कर्म बाँधकर स्वयं अपराधी होगा। उस वस्तु को थोड़े दिन पश्चात् विसारना तो है। अत: आर्तध्यान कम करके आत्मा को वैराग्य की ओर झुकाना ही श्रेयस्कर है। यह संसार एकान्ततया दु:ख से जल रहा है; उसमें जो सत्य सुख का मार्ग ढूँढना, वही आत्मा को कल्याणरूप है।

अब तो संसार के भ्रान्तिरूप सुख में से निकलकर सत्य सुख ढूँढ़े बिना, पुरुषार्थ किये बिना, धारावाही पुरुषार्थ किये बिना, इस जीव को किसी भी काल, इस पर्यटन का किनारा आनेवाला नहीं है। इस दु:ख का अन्त आनेवाला नहीं है। यह जीव जहाँ जन्मा, जिस देह को धारण किया है, वहाँ-वहाँ अभिमान से वर्तकर, अपनत्व मानकर अनादि काल से घूमता है; और अभी भी उस परिभ्रमण का किनारा नहीं आया है। अहा! जीव को अनन्त दु:ख पड़े, फिर भी उसने नरक के अनन्त दु:ख सहे, फिर भी वह क्यों नहीं जागृत होता ? वैराग्य पर पाँव रखकर, क्यों अब भी चला जा रहा है ? क्या अब भी जीव को दु:खमय संसार प्रिय लगता है ? अब तो

जागृत हुए बिना छुटकारा नहीं है। अत: अब तो आर्तध्यान के बदले में वैराग्य बढ़ाना, आत्मा को श्रेयभूत है।

तुम्हारे माता-पिता को भी धीरज देकर आर्तध्यान कम करवाना। क्या करें ? आयुष्य के पास किसी का उपाय नहीं है। बस, यह ही।

लि.

चम्पा के वन्दन

☆☆☆

वि.सं. 1989 (ई.स. 1933)

पूज्य भाईश्री,

आपका पत्र मिला। ज्ञानगुण और आनन्दगुण, वह आत्मा का स्वभाव है; अत: वह आत्मा में से मिले ऐसा है। वह बाहर से नहीं मिलता है। चैतन्यदेव के आनन्द के एक अंश के सामने, सारे चौदह राजूलोक का सुख व आनन्द धूल जैसा है, विष्टा जैसा है। अरे चैतन्य! तेरे सुख को छोड़कर कहाँ दौड़ रहा है ? बाहर से क्या लेना है ? अपने में है, वह बाहर से नहीं मिलेगा, त्रिकाल नहीं मिलेगा। उसके लिये चाहे जितना परिश्रम करोगे, चाहे जितना काल परिश्रम करोगे, तो भी नहीं मिलेगा। अपने में है, वह बाहर से नहीं मिलेगा।

लि.

हितेच्छु बहिन,

☆☆☆

वि.सं. 1989 (ई.स. 1933)

परम उपकारी भाईश्री,

आपका पत्र मिला। आपके जैसे पात्र आत्मा को कहाँ तक शंकाएँ करते रहना है ? फिर ऐसा अपूर्व योग कब पाओगे ? जिनका हृदय और आपका हृदय एक है, उनके प्रति विश्वास नहीं रखोगे तो फिर किसके प्रति रखोगे ? आपको चढ़ने का स्थान कहाँ रहा ? – वह विचारो।

निश्चय से कहती हूँ कि संसार में एकान्त दु:ख है। आपको न समझ में आता हो तो भी श्रद्धा रखो। वर्तमान में ही दु:खी हो, श्रद्धा रखो, जरूर श्रद्धा रखो। जिसके प्रति आपको श्रद्धा है, उसके वाक्य के प्रति श्रद्धा रखो। पूज्य महाराज साहेब जैसे का समागम मिला, अब तो श्रद्धा करो। महाराज साहेब को पूछने से वस्तुस्वरूप मिल रहा है।

जिसको जागना है, वह एक वाक्य से जागता है। अत: जागना हो तो जागो, चेतना (सावधान होना) हो तो चेतो। यह ही।

लि.

शुभेच्छक बहिन

**(पूज्य गुरुदेवश्री ने दशा सम्बन्धित पूछाया था,
उसके उत्तररूप पूज्य बहिनश्री ने
लिखकर भेजा था। उसमें से....)**

(वि.सं. 1989, ई.स. 1933)

हिम्मतभाई (आठ दिन) आये, उस समय तीन बार निर्विकल्परूप स्थिरता हुई थी। परिणति ज्ञायक की ओर रहा करती है। अभी कुछ पढ़ा जाता है, कुछ विचार चलते हैं, पर वह ज्यादा रस सहित नहीं।

अन्तर में ज्ञाताधारा-भेदज्ञानधारा चलती रहती है। विभावों से विरक्ति रहा करती है।

जो दशा है, उसकी सब जानकारी दे दी है।

☆☆☆

सूरत, ता. 28.7.1933
(वि.सं. 1989
श्रावण शुक्ला 6, शुक्रवार)

बहिन चम्पा और सुशीला,

आपके पत्र मिले।

'कहने में कुछ कमी नहीं रखी है' यह बात बिलकुल सत्य है। अब करना ही बाकी रहा है। आपके वैराग्यप्रेरक पत्रों से अभी भाव अच्छे रहते हैं।

कोई भी बाहर की वस्तु का आधार छोड़कर, अपने पर ही आधार रखकर जीना, अपने में से ही सुख खोजने में निरन्तर प्रयत्नशील रहना,

वह तलवार की धार से भी अधिक कठिन है, परन्तु वह कठिन होने पर भी, बिना किये कहाँ छुटकारा है? क्योंकि कठिन तो कभी सरल होनेवाला है ही नहीं। तब क्या करना?

मैं अगले शुक्रवार आपकी ओर (पास) आऊँगा। नौ-दस दिन वहाँ रहूँगा। पत्र लिखना।

लि.

हिम्मत के प्रणाम

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1991

ई.स. 1935

आत्मार्थी भाई हिम्मतभाई तथा सुशीला के प्रति,

आपकी भावना के कारण, पत्र लिखने का लक्ष्य आने से, पत्र लिखा जा रहा है। थोड़े दिन पहले आपका जो पत्र था, उसमें लिखते थे कि परीक्षा आई होने से निवृत्ति के कारण, अभी मोक्षमार्गप्रकाशक का पठन होता है, तो शुद्धस्वरूप के लक्ष्यपूर्वक सेवित वह शुभयोग लाभ देता है। जैसे बने वैसे अशुभयोग कम करके शुभयोग में, शुद्धस्वरूप के लक्ष्यपूर्वक, विशेषरूप से प्रवर्तन हो, वह लाभरूप है, हितरूप है।

शरीर की प्रकृति, किसी समय साता के रूप में कभी असाता के उदय में वर्तती है। आपकी शरीरप्रकृति कमजोर रहती है - ऐसा आपके पत्र से जाना था; तो जिसका जो स्वभाव है, उसके अनुसार वह परिणमे बिना नहीं रहता। शरीर का स्वभाव ही ऐसा है। कीमत तो उसकी है कि

ऐसे शरीर में से जो आत्मसाधना साध ले।

लि.
निमित्तमात्र

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1992
(ई.स. 1936)

सत्पुरुषों की कृपा इच्छुक सुशीला के प्रति,

कल सूरत से लिखा पत्र मिला है।

किसी भी तरह के कठिन रोग के उदय में भी मुमुक्षुगण आत्महित भूलते नहीं। समपरिणाम, स्थिर परिणाम (कम आकुलता), सहनशीलता और धैर्य बढ़ाना, वह ही श्रेयस्कर है।

आत्मा बाह्य प्रसंगों से भिन्न है। मन, वाणी, देह, संकल्प-विकल्प सर्व से, आत्मा एक ज्ञायकस्वरूप भिन्न है, अलग है, वह लक्ष्य रखने योग्य है।

लि.
वीतरागस्वरूप के चरणकमल इच्छुक

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993
(ई.स. 1937)

पूज्य बड़े बहिनश्री (बड़ी बहन) आदि,

आपका पत्र मिला। बहिन चन्दु का विवाह माघ कृष्णा नवमी को है, वह जाना है। उस प्रसंग पर मुझे बुलाने की आपकी भावना हो, वह स्वाभाविक है। परन्तु मेरा अन्तरंग ऐसा हो गया है कि मुझे इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान जाने की रुचि नहीं होती। दूसरी जगह कहीं भी जाना मुझे जरा भी नहीं सुहाता। यहाँ सत्पुरुष का समागम छोड़कर कहीं भी जाना सुहाता नहीं।

फिर ऐसे धमाचौकड़ी के प्रसंग में आने की जरा भी रुचि नहीं है। मुझे तो एकान्तस्थान में-निवृत्ति में जीवन बिताना, वही रुचिकर है। दूसरे जीवों का ज्यादा परिचय रुचिकर नहीं - ऐसा जीवन है। वहाँ शादी के प्रसंग में, मेरे जैसे का क्या काम हो ? मुझे शादी के प्रसंग पर आना जरा भी अच्छा नहीं लगता।

बहिनश्री (बड़ी बहन) ! मेरा हृदय जैसा है, वैसी जानकारी दी है। इसलिए आप मेरे हृदय की ओर दृष्टि देकर, मुझे ऐसे प्रसंग पर बुलाने का अति आग्रह न करें, तो अच्छा - ऐसी मेरी नम्रभाव से विनती है। यद्यपि आपको मेरे प्रति भाव हो, वह स्वाभाविक है, क्योंकि आपने इस देह को पाला-पोसा है, परन्तु मैं तो अपने भाव कहती हूँ। विवाह के बाद शान्ति के समय, हमें मिलने का प्रसंग बन जाएगा, उस प्रसंग पर मिल सकेंगे।

वहाँ सर्व का स्वास्थ्य अच्छा होगा। चन्दु, कंचन, कान्ति, शारदा आदि मजे में होंगे।

लि.

बहिन चम्पा के नम्रभाव से वन्दन।

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993

(ई.स. 1937, उम्र - वर्ष 23)

पूज्य पिताश्री एवं सुशीला का पत्र मिला, पढ़कर समाचार जाने। नम्र विनती से लिखती हूँ कि, आपने द्वितीय-तृतीया को लेने आने का लिखा, तो इतनी जल्दी आने के लिये मेरे भाव बिलकुल नहीं उठते। यह, कोई लेने न आ जाए, इसलिए लिखती हूँ।

ज्यादा अच्छा तो यह है कि - बड़ी बहन यहाँ आये तो उनको पूज्य महाराजसाहब का लाभ भी मिले और मिलन भी हो; फिर भी बड़ी बहिन को, वहाँ आने का बहुत ही आग्रह रहता हो, तो उनके आग्रह हेतु ज्यादा से ज्यादा एक सप्ताह वहाँ आकर रहना और सबको मिल जाना - ऐसे मेरे भाव हैं।

बड़ी बहिन आदि को यथायोग्य वन्दन।

पूज्य गुरुसाहिब सुखशान्ति में विराजते हैं।

निरन्तर सद्गुरु और सत्संग ही चाहिए, यह ही भावना है।
एक आत्मा ही चाहिए, यह ही भावना है।

लि.
बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन
–श्री सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993
(ई.स. 1937, उम्र–वर्ष 23)

पूज्य भाई हिम्मतभाई और सुशीला,

एक आत्मा का (कान्ति का) देह छूट जाने से मुझे वांकानेर जाना पड़ा था।

पूज्य बहिन और बहनोई को बहुत मानसिक आघात लगने से तथा भाई आदि को भी बहुत आघात लग गया है – ऐसा पत्र मिलने पर और बुलाने जैसा आशय होने से, वहाँ जाने की आवश्यकता ख्याल में आने से, वांकानेर गयी थी। वहाँ दो दिन रहकर, पूज्य बहिन और बहनोई को साथ लेकर यहाँ आ गयी हूँ।

पूज्य बहिन और बहनोई यहाँ आये कि, तुरन्त परमकृपालु की कृपा द्वारा उनकी ओर से बहुत आत्महित का उपदेश और आश्वासन मिला था। सुबह और दोपहर को 'श्रीमद्' पढ़ा जाता था। पूज्यश्री अद्भुत उपकार कर रहे थे। उनके चरण, यहाँ अपने घर भी पड़े थे।

कृपालु सद्गुरु की कृपा अद्भुत थी। सब लाभ बहुत अच्छा मिला

था। सबको यहाँ अच्छी तरह शान्ति हुई थी। सबको यहाँ बहुत ही अच्छा लगता था।

चन्दु, बहन आदि सर्व को इस ओर की (सोनगढ़ के ओर की) महत्ता और अच्छा लगाव हुआ था।

सभी द्रव्य स्वतन्त्र परिणमते हैं। पूरी कुदरत स्वतन्त्र परिणमती है। कोई किसी का स्वामी नहीं। जीवों ने पर का स्वामित्व माना है, वही उनका अज्ञानपना है और वही उनके दु:ख का मूल कारण है।

जिनको पर के प्रति स्वामित्व-अपनापन छूटा, उनको राग भी छूट जाता है, क्रमपूर्वक पूर्ण वीतराग हो जाता है।

ऐसे प्रसंगों में आत्मा की ओर—आत्मा की विशेष वृद्धि की ओर—संलग्नता, वह योग्य है। आत्मा के सम्भालपूर्वक राग का विस्मरण हो, वह प्रशंसा योग्य है। ऐसे प्रसंगों में विशेष-विशेष वैराग्य प्राप्त कर, विशेष-विशेष आत्महित की वृद्धि में संलग्न होना योग्य है।

वांकानेर में सर्व का कल्पान्त (रोना) देखकर साधारण का तो कलेजा फटे, वैरागी का वैराग्य फटे, ज्ञाता परिणामी का ज्ञाता फटे - ऐसा वह प्रसंग था।

जो बाह्य और अभ्यन्तर परपदार्थ का प्रेम विस्मरण करके सर्वांशे स्वरूप में लीन हुए, उनको नमस्कार है, बारबार नमस्कार है।

लि.

परमपुरुष वीतराग आदि

सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993

(ई.स. 1933; उम्र-वर्ष 23)

भाई श्री हिम्मतभाई को कहना कि—यहाँ दोपहर को वांचन में पूज्य साहेब ने समयसार पढ़ना प्रारम्भ किया है। इस कारण (वह) पढ़कर (उस पर) विचार किया होगा तो, विशेष लाभ का कारण होगा।

बहिन चन्दु को वहाँ के, आपके धार्मिक वातावरण में अच्छा लगता होगा।

बहिन (चन्दु)! अनादि की भ्रान्ति को लेकर स्थिर (लगते) ऐसे संसार में, प्रेम करनेयोग्य (यदि कोई हो तो स्वयं) आत्मा और सत्संग आदि साधन ही हैं। विशेषप्रेम करनेयोग्य हो तो वे हैं। बाह्य से संयोग बने या न बने, परन्तु अन्तरंग में मुख्य रुचि वहाँ हो तो भी लाभरूप है।

परमपूज्य साहेब सुखशान्ति में विराजते हैं। ये ही-

श्री सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

.....!

आप सबका लिखा हुआ पत्र मिला।

शान्ति-समाधि रखकर आत्मकल्याण में संलग्न होना श्रेयस्कर है।

कोई आता है, कोई जाता है -ऐसा क्रम संसार में चालू ही रहता है। शान्ति लाभरूप है। आत्मा स्वयं अकेला ही है।

लि. बहिन चम्पा के वन्दन

-श्री सत्पुरुषों को नमस्कार

धर्म पर लक्ष्य देना। संसार बहुत दु:खस्वरूप है, कोई सुखी नहीं है। अत: आर्तध्यान और रौद्रध्यान न करते हुए, धर्मध्यान करने पर लक्ष्य देना।

द : जेठालाल

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993
(ई.स. 1937; उम्र-वर्ष 23)
ज्येष्ठ शुक्ला 11, शनिवार

पूज्य बहिन और बहनोई आदि,

.....भविष्य का पोषण और शान्ति, परपदार्थ के सम्बन्ध में मानी जाती है, वह सत्य नहीं है। जगत स्वयं से निभता है, स्वयं के पुण्य से ही निभता है, अपने से ही शान्ति पाता है। अपनी वृत्ति से दु:ख है और अपनी वृत्ति से ही सुख है।

संसार के प्रेमी (प्रेमपात्र) पदार्थ के लिये चाहे जितना तरसे, फिर भी जो हुआ है, सो हुआ है। समझकर शान्ति रहे, वह हितरूप है।

जगत भूलकर आत्मास्वरूपारामी श्री सद्गुरु, श्री वीतराग को बारबार नमस्कार। यह ही,

-श्री सत्पुरुषों को नमस्कार
- बहिन चम्पा के विनयपूर्वक वन्दन

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993

(ई.स. 1933) आश्विन शुक्ल 9

पूज्य बड़ी बहन तथा बहनोई आदि,

....यहाँ पर्यूषण काफी अच्छे हुए थे। गाँव-गाँव से बहुत लोग पर्यूषण पर आये थे। सुबह और दोपहर को प्रवचनवाणी का प्रपात अपूर्व बरसता था। वहाँ सभी 'श्रीमद् राजचन्द्र' पढ़ते होंगे।

ज्ञानी कहते हैं कि आत्मा और देह भिन्न है। वह भिन्न ही है। अत: अन्त समय में स्वाभाविक भिन्न पड़ते हैं। इसलिए पहले से ही आत्मा को अलग करना, समझ लेना। राग-द्वेष और मोह की अशुद्धता से आत्मा को अलग करना ही (जीवन की) सफलता है। उसी की भावना और चिन्तवन लाभरूप है। वह प्राप्त हो - ऐसे साधनों की सेवना करने की भावना, वह हितरूप है।

उलझन, वह कर्मबन्ध का कारण है। यह देह भी अपना नहीं तो अन्य वस्तु तो अपनी कहाँ से हो ?

बाह्य और अभ्यन्तर सर्व उपाधि से छूटकर बड़े महात्मा जंगल में बसते हैं और स्वरूपानन्द में मस्त रहकर आत्मा को उज्ज्वल बनाते हैं, उनको धन्य है।

परम पूज्य कृपालु साहिब सुखशान्ति में विराजते हैं।

लि.

बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

श्री सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

बहिन चन्दु,

चाहे जिस तरह के प्रसंग हो, उसके बीच शान्ति, वह श्रेयभूत है। अन्य कोई उपाय नहीं है। आकुलता उलटा नुकसान का कारण होगी। पूर्व के अपने ही परिणाम का फल है—ऐसा जानकर शान्ति रखना, भावना भाना, आत्मरुचि बढ़ाना, वह स्वयं की स्वतन्त्रता की बात है। उसे बाहर के संयोग रोक सके—ऐसा नहीं है। सच्ची रुचि होगी तो भविष्य में कभी, भविष्यत् भव में, आत्मार्थी को इच्छित संयोग जरूर मिल जायेंगे। आत्मा में पड़े हुए रुचि के बीज कहाँ जायेंगे? इसलिए जिस तरह हो, वैसे आत्मरुचि बढ़ाना। चाहे जैसे संयोग में शान्ति और धीरज रखना, वह लाभ का कारण है।

संसार की जाल बाहर नहीं है, परन्तु अन्तर में ही है।

परमकृपालु गुरुसाहिब सुखशान्ति में विराजते हैं।

श्री वीतराग आदि सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

पूज्य बड़ी बहिन, बहनोई एवं बहिन चंदु,

परम उपकारी कृपालु गुरुसाहेब सुखशान्ति में विराजते हैं।

अनुकूल-प्रतिकूल संयोग होना, यह तो संसार की स्थिति ही है। उसको बदलने में आत्मा का समर्थपना नहीं है; किन्तु इस संसार समुद्र में से आत्मा को तार कर ऊँचे लाना, वह अपनी स्वतन्त्रता की बात है।

रिश्तेदार के रूप में जीवों का मिलना और बिछुड़ना, वह जड़-चैतन्य के सम्बन्ध के कारण हुआ ही करता है। यद्यपि राग के कारण

बारबार स्मरण हो जाये, वह स्वाभाविक है, परन्तु अनादि परिभ्रमणरूप संसार में हजारों सगे-सम्बन्धियों का वियोग होता है, हजारों का राग कुदरत ने भुलाया है। फिर जीव जहाँ जन्मता है, वहाँ अपनापन मान बैठता है; परन्तु वे रिश्तेदार भी छूट गये हैं और फिर से दूसरे किये हैं। ऐसा क्रम इस संसारचक्र में चला ही करता है।

वहाँ, परद्रव्य में शरण और विश्राम माना जाता है, वह यथार्थ नहीं है। परद्रव्य का सम्बन्ध तोड़ने के लिये, पूर्ण वीतराग सत्स्वरूप प्राप्त करने के लिये, सत् कैसे मिले ? उस ओर रुचि जो करता है एवं सत्पुरुषों का शरण जो अन्तरंग से स्वीकारता है, वह आत्मविश्राम पाता है।

बने हुए प्रसंग से वृत्ति को जैसे हो, वैसे उठाकर, उसे आत्महित की जिज्ञासापूर्वक वांचन-विचार आदि में जोड़ना, वह इच्छने योग्य है।

वहाँ सभी 'श्रीमद्' पढ़ते हो, वह अच्छा है; पढ़ने जैसा है।

जगत में सबसे अधिक आत्मकल्याण का तथा सत्पुरुष का प्रेम हो, वही लाभ देता है।

लि.

बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

-श्री सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993
(ई.स. 1937, 24वाँ वर्ष)
चैत्र शुक्ला 10

पूज्य बहिन, बहनोई तथा चन्दु आदि,

आपने लिखा, कि सोनगढ़ बारबार याद आता है और पूज्य कृपालु साहेब के प्रवचन बहुत याद आते हैं और उसके अनुसार वर्तन करते हैं, ऐसा लिखा वह जाना, तो उस प्रकार का वर्तन विशेष-विशेष रखने जैसा है।

जैसे बने वैसे, सत्पुरुष की कही हुई पंक्तियाँ, उनके प्रवचन, वे रहते थे, वह पवित्र धाम, सत्संगमण्डल, अच्छे सद्-वांचन, अच्छे सद्-विचार, उन सर्व की बातें - उसमें मन स्थिर हो, वह लाभरूप और कल्याणरूप है।

बाकी जो होनेवाला है, वह हुआ ही करता है। बना हुआ प्रसंग याद आये, ऐसे आसपास के प्रसंग, व्यवहारिक लोगों का आना-जाना आदि प्रसंग, वहाँ बनने सम्भव हैं, परन्तु हृदय में ज्यादा दु:ख रखना नुकसान का कारण है और आत्मा को अहित का कारण है—ऐसा सोचकर, अब इस मूल्यवान मनुष्य जीवन में आत्महित कैसे हो ? वह ही विचारने योग्य है। आयुष्यस्थिति क्षणिक है। जीवन में कुछ किया होगा, वह ही अन्ततः शरणरूप है। सुख दूसरे पदार्थों में, सगे-स्नेहीजन और पुत्र-पुत्रियों में नहीं है, परन्तु आत्मा में है। जहाँ सुख नहीं है, वहाँ सुख मान लिया जाता है, वही दु:ख का कारण है।

वास्तविकता क्या है ? सत् क्या है ? हितरूप और कल्याणरूप क्या है ?–वह समझने योग्य है।

जिसको आत्मा समझ में नहीं आता, सत् तत्त्व समझ में नहीं आता, उन्हें जिन्होंने सत् पाया है—ऐसे सत्पुरुषों की भक्ति, हृदय में से भुलाने योग्य नहीं है। उनके कहे अनुसार, जैसे बने वैसे वांचन, विचार, बातचीत भी वह ही रहे, वह लाभरूप है।

श्रीमद् राजचन्द्र का पुस्तक, आत्मानुशासन—वह सबको पढ़ने योग्य है। यहाँ श्रीमद् राजचन्द्र का पुस्तक किस तरह पठन किया जाता था; वह लक्ष्य में रखने से कुछ समझ में आयेगा। श्रीमद् राजचन्द्र का पुस्तक समझ में आये तो काफी अच्छा है।

अच्छे परिणामसहित, जप–तपरूप सभी क्रिया से ऊँची गति और अशुभ परिणामसहित अशुभक्रिया से नीची गति। मोक्षस्वरूप आत्मा का मोक्षमार्ग अलग है। वह बात भूलने योग्य नहीं है।

मन–वचन–काया की शुभ–अशुभ क्रिया से आत्मा साक्षात् अलग है, वह ज्ञानियों की अनुभवसिद्ध बात है।

सर्व जीव आत्मलाभ पायें – ऐसी भावना होने से, यह सब लिखा गया है। वहाँ सबको यथाशक्ति और यथाप्रकार से आत्मलाभ की ओर संलग्नता जैसे बने, वैसे हो—ऐसी भावना है।

परम कृपालु श्री सद्गुरुदेव सुखशान्ति में विराजते हैं।

– श्री सत्पुरुष को नमस्कार

–बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1994
(ई.स. 1938, उम्र वर्ष 24)
आश्विन शुक्ल 10

भाई श्री हिम्मतभाई,

आपने एकाध सप्ताह वांकानेर जाने का लिखा, तो ठीक है, परन्तु वहाँ से एकाध सप्ताह में पुरुषार्थ करके तुरन्त यहाँ आ जाना; क्योंकि आत्मा को अभी सत्संग की जरूरत है। गत समय वैशाख मास में भी आप तुरन्त नहीं आ सके, परन्तु उत्सव के कारण आ गये थे। पाँच-छह महीना सूरत में रहना, बाकी का ज्यादा समय बड़े भाई के (वजुभाई के) प्रेमभाव के कारण वांकानेर रहना, उसका अर्थ सत्संग का समय एकदम कम रखना! परन्तु आत्मा को अभी सत्संग की जरूरत है। अत: जरूर पुरुषार्थ करके आना।

लि.
बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1994
(ई.स. 1938, उम्र वर्ष 24)
सावन शुक्ला 10,

पूज्य बड़ी बहिन आदि,

आप सभी देश में आओ तब यहाँ सोनगढ़ पूज्य महाराज साहिब का लाभ लेने आना। इस पंचम काल में ऐसे सत्पुरुष दृष्टिगोचर होना भी दुर्लभ है, तो फिर उनकी वाणी, उनका अद्‌भुत और अपूर्व ज्ञान, सत् का समझना, दुर्लभ हो, उसमें कुछ आश्चर्य नहीं। कोई आत्मार्थी जीव, जगत की ओर दृष्टि नहीं देते - ऐसे सत्पुरुषों का सत्संग करके आत्मलाभ पाते हैं।

महा कीमती मनुष्यजीवन में कुछ भी सार्थकता हो तो भी अच्छा है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी आत्मलाभ की प्राप्ति हो सकती है।

लि.
बहिन चम्पा के वन्दन

☆☆☆

पूज्य बड़ी बहिन की सेवा में,

.....सत् की ओर झुकाव, आत्मधर्म का झुकाव, उस ओर का विशेष रंग (भाव) रहे तो वह लाभरूप है.....

लि.
बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1994
(ई.स. 1938, उम्र वर्ष 24)
सावन शुक्ला 10

पूज्य बड़ी बहिन और बहनोई,

परम पूज्य कृपालु साहेब सुखशान्ति में विराजते हैं। वहाँ आप सभी वांचन, भक्ति आदि करते होंगे।

इस समय (आपका) सोनगढ़ में ज्यादा निवास हो सका, उससे वस्तुस्वरूप के यथार्थ दाता ऐसे पूज्य साहिब के प्रवचन आदि का अच्छा लाभ मिला। यहाँ का समयसारजी का महोत्सव, भक्ति,पूज्य साहेब का अद्‌भुत उपदेश आदि का स्मरण करो तो भी लाभ का कारण होगा। कंचन और शारदा आनन्द में होंगे।

'आत्मसिद्धि' सीखने योग्य है, विचारने योग्य है, समझने योग्य है।

लि.
बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

पूज्य बड़ी बहिन और बहनोई,

बहिन चन्दु का पत्र मिला था। परम पूज्य कृपालु गुरुसाहेब सुखशांति में विराजते हैं। गिरनार की यात्रा कोई अपूर्व हुई थी। कृपालु साहेब राजकोट से विहार करके—गोंडल, जेतपुर, अमरेली, लाठी आदि बहुत से गाँवों में विहार करके, बहुत से जीवों को अपूर्व लाभ देकर—यहाँ सोनगढ़ विराजते हैं, अद्‌भुत लाभ दे रहे हैं।

बहिन चन्द्रमणि का पत्र था। लिखा था कि बहिन कंचन को भक्ति का रंग (प्रेम) अच्छा है, तो वह रंग और रुचि बढ़ाने योग्य है।

मनुष्य जीवन में करने योग्य तो वास्तव में आत्मा का ही है।

शारदा को भी ऐसे संस्कार पड़े तो अच्छा है।

यहाँ इस शरीर का स्वास्थ्य अच्छा है। वहाँ सभी का स्वास्थ्य अच्छा होगा। मगनलाल के शरीर में वात का रोग आया है, असाता के उदय के समय शान्ति रखना।

पूज्य बहिनश्री की भानेज ब्रह्मचारी कंचनबेन
(जिन्होंने पूरा जीवन पूज्य बहिनश्री के साथ रहकर उनके पवित्र चरण में अनन्य सेवाभक्ति समर्पित कर जीवन का अमूल्य लाभ लिया।)

लि.
बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

पूज्य बड़ी बहिन एवं बहनोई आदि,

संसार असार है। सारभूत आत्मपदार्थ है। सद्गुरु और सत्संग के साधन आदरणीय हैं।

परम पूज्य साहेब सुखशान्ति में विराजते हैं।

कंचन तथा शारदा आनन्द में होंगे, 'आत्मसिद्धि' सीखते होंगे।

लि.

बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1995

(ई.स. 1939 उम्र वर्ष 25)

भाईश्री हिम्मतभाई,

आपका पहले का लिखा हुआ पत्र मिला था एवं समयसार की कॉपी और पत्र आदि सर्व कल सन्ध्या के समय मिले। समयसार की कॉपी तुरन्त परमकृपालु साहेब को पहुँचाई है एवं दोनों पत्र भी पढ़ने भेजे हैं। माननीय रामजीभाई यहाँ थे, अत: उन्होंने भी अनुवाद पढ़ा है। परम कृपालु साहेब एवं रामजीभाई ने अनुवाद की प्रशंसा की-ऐसा सुना है। समयसार के विषय में आपने पत्र में लिखा हुआ विस्तृत वर्णन वह सब मिलाकर एवं पूरी कॉपी मिलाकर - कृपालु साहेब क्या कहते हैं ? वह पीछे लिखूँगी।

पौष कृष्णा दसमी को यहाँ से परम कृपालु साहेब के साथ सर्व भाई-बहिन संघसहित पालीताणा जानेवाले हैं। बहिनों को भी साथ चलने

की स्वीकृति मिली है। वहाँ से आने के पश्चात् कृपालु साहेब राजकोट की ओर विहार करेंगे। चातुर्मास यहाँ करेंगे, ऐसा अभी लगता है।

परम पूज्य कृपालु साहेब का अभिप्राय ऐसा है कि – जिस तरह समझ में आये उस तरह 'अनन्त व्यक्ति' का स्पष्टीकरण, कोष्ठक में भी स्पष्ट होना चाहिए। कृपालु साहेब के प्रभावना-उदय को तो आप जानते हो कि – दूसरों को समझाने का उनको कितना उदय वर्त रहा है।

संस्कृत के कठिन शब्द आये उसका, अन्त में कोष्ठक (bracket) में भी, जिस तरह समझ में आ सके, ऐसे स्पष्टीकरण करना, नहीं समझ में आये तो ना लिखना कि, मुझे नहीं आता है; सद्गुरु के उदयानुसार करना कोष्ठक (bracket) बढ़े तो बढ़ने देना। जैसी होनी होगी वैसा होगा।

लि.

बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1995

(ई.स. 1939, उम्र वर्ष 25)

भाई श्री हिम्मतभाई,

इसके साथ समयसार के अनुवाद की कॉपी तथा उसमें भाई अमृतलाल ने लिखी हुई संशोधन की सूचनावाला पत्र है, वह पढ़ लेना; वह पढ़कर विचारपूर्वक आपको जो योग्य लगे, उसके अनुसार सुधारना। वह पूरा पत्र पूज्य साहेब ने पढ़ा नहीं है। कृपालु साहेब ने थोड़ा अनुवाद

देखकर दूसरा अनुवाद भाई अमृतलाल को देखने सौंप दिया था। भाई अमृतलाल ने पत्र में कतिपय पूज्य साहेब के अभिप्रायानुसार लिखा है, कुछ अमृतलाल का स्वयं लिखा हुआ है।

आपका अनुवाद अच्छा है। कृपालु साहेब ने एवं रामजीभाई ने भाषा की रचना आदि की सराहना की थी; भाव भी अच्छे थे, किसी जगह अर्थ का संयोजन भी अच्छा किया है। कृपालु साहेब कहते थे कि, 'हिम्मतभाई ने जो किया होगा वह, विचार कर ही किया होगा' – आदि कहते थे, परन्तु कृपालु साहेब का अभिप्राय इस तरह खास रहता है कि हिन्दी अनुवाद में संस्कृत टीका के शब्द जो रह गये हो वह तथा हिन्दी अनुवाद में जो विरोधवाले अर्थ हों, उसको यथार्थ तरीके से लिखना। बाकी बिना प्रयोजन, भाव न बदलता हो तो, वाक्यपंक्ति की रचना बदलना नहीं, कोई भी पंक्तियाँ छोड़ नहीं देना, बिना कारण जोड़ना भी नहीं। सद्गुरु कृपालु साहेब की इच्छा हो, उसी तरह अनुवाद करना।

'शिव-भूप' के 'सहु-भूप' अर्थ ज्यादा अच्छा लगता है। सवैया के विषय में आपको जैसा ठीक लगे ऐसा करना – ऐसा कृपालु साहेब ने कहा है।

इस बार यह प्रथम कॉपी थी, अतः बहुत देखा है। यह कॉपी सुधारकर आने के बाद तुरन्त अब छापने दी जायेगी; अब कुछ सुधार नहीं होगा। इसके बाद जो दूसरी कॉपी आये, वह थोड़ी बहुत देखकर छापने दे देना- ऐसा पूज्य साहेब हाल में कहते थे। वही—

श्री वीतराग को नमस्कार

☆☆☆

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के बन्धु श्री हिम्मतभाई
श्री समयसारादि परमागमों का गुजराती अनुवाद करते हैं।

सोनगढ़, वि.सं. 1996

(ई.स. 1940, उम्र वर्ष 26)

पूज्य आदरणीय बहिन एवं बहनोई,

परम पूज्य कृपालु साहेब, राजकोट से विहार करने के पश्चात् गाँव-गाँव विहार करते हुए, बहुत जीवों को अपूर्व लाभ देते हुए, प्रायः एक सप्ताह पहले सोनगढ़ पहुँच गये हैं।

हम भी सोनगढ़ क्षेत्र में हैं। बहिन चन्दु वर्तमान में करांची है - ऐसा सुना है। यहाँ इस शरीर का स्वास्थ्य अच्छा है। मनुष्यजीवन में आत्मार्थिता प्रकट हो तो मनुष्यजन्म कुछ अंश में सफल गिना जाए.....

लि.

आत्मार्थी बहिन चम्पा

- श्री सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1997

(ई.स. 1940, उम्र वर्ष 27)

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रथमा, शनिवार

पूज्य आदरणीय बहिन और बहनोई आदि,

श्री समयसारजी शास्त्र का गुजराती अनुवाद सम्पूर्ण होने से, कार्तिकी पूर्णिमा के दिन उत्सवपूर्वक प्रकाशन किया है। कुछ पुस्तकों की जिल्द (binding) बँधी है, दूसरी जल्द बँध रही है। आपने भेजे हुए पैसों में से, बीस पुस्तक होंगे। एक पुस्तक का मूल्य ढाई रुपया है। आपको

कितने पुस्तक की आवश्यकता है, वह जानकारी देना, क्योंकि ऐसा महाशास्त्र खास योग्य जीवों को देना। जहाँ-तहाँ यह पुस्तक मुफ्त देने से उल्टा दुरुपयोग का कारण हो और उल्टी असातना का कारण होगा। अतः यह पुस्तक खास योग्य बहुमानवाले हो, उन्हें देना; जहाँ-तहाँ मुफ्त नहीं देना। इसलिए आपको कितने पुस्तकों की अवश्यकता है, वह लिखना, बाकी के पुस्तक स्वाध्यायमन्दिर में रखने का ख्याल आवे। समयसार पुस्तक अति विचारपूर्वक, आत्मार्थितापूर्वक, बहुत भक्तिभावपूर्वक पढ़ने योग्य है। गुजराती हरिगीतवाली गाथा भी उसमें आयेगी। वहाँ सभी को वांचन, विचार और भक्ति करनेयोग्य है।

लि.

बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1997
(ई.स. 1941, उम्र वर्ष 27)

बहिन चन्द्रमणि,

प्रभाबेन के साथ भेजा हुआ पत्र मिला था।

समयसार पुस्तक छपकर प्रसिद्ध हो गये हैं। श्री जगजीवनदास यहाँ सोनगढ़ आये थे। समयसार पुस्तक यहाँ से खरीदकर गये हैं। भाव अच्छे थे। दूसरी कोई विशेष बातचीत नहीं हुई है।

तुम्हें, वहाँ सत्संग है—ऐसा विचारकर शान्ति रखना है। छूटने की उतावली होती हो तो विचारना। जगजीवनदास और वे सब लोग तुम्हें छोड़ेंगे? या कैसे क्या (होगा)? क्योंकि बोले तो सही, परन्तु छूटने के समय छोड़ना बहुत मुश्किल है। संसारी मनुष्यों को प्रतिष्ठा का प्रश्न उठता है। इसलिए बहुत विचारने योग्य है। शान्ति रखना, भावना भाना; अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों को समभाव से सहन करना; आत्मभावना बढ़ाना; जितना सत्संग मिलता है, उतने में शान्ति रखकर आगे बढ़ना; किसी का महल देखकर अपनी झोपड़ी को जलाया नहीं जाता।

बहिन आदि करांची से देश में कब आयेंगे, उसकी कोई खबर नहीं है। बहिन कंचन लिखती थी कि, 'देरासर (मन्दिर) की नींव डाली होगी', उस पर से लगता है कि कदाचित् देश में आने का विचार होगा।

भावना भाना। दर्शन करने का योग कभी बन जायेगा; तब हृदय में कुछ शान्ति होगी।

पूज्य कृपालु साहेब के हस्ताक्षर की एवं उनकी तसवीर की अलग

कॉपी यहाँ मिलती है। यह ही—

– सर्वज्ञ वीतराग आदि सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1999

(ई.स. 1943, उम्र वर्ष 29)

भाई हिम्मतभाई,

आपका पत्र सन्ध्या को मिला; प्रात:काल में पूज्य गुरुदेवश्री विहार करनेवाले थे। जिससे रामजीभाई आदि से खास कुछ बात नहीं हो सकी। पूज्य गुरुसाहेब ने बृहस्पतिवार, फाल्गुन शुक्ला पंचमी को सुबह, प्रभावना-उदय का विकल्प आने से, सुवर्णपुरी से विहार किया है। अभी उमराला गाँव में विराजते हैं।

आत्मसिद्धि के प्रवचन की प्रस्तावना में परम उपकारी गुरुसाहेब का जीवन चरित्र डाला जा सके तो अच्छा – ऐसे हमारे भाव हैं। दूसरे किसी को-रामजीभाई को पूछ नहीं सकी हूँ, फिर भी लिखकर भेजोगे तो उसमें दिक्कत नहीं है। पूर्व का लिखा हुआ जीवनचरित्र यहाँ रखा है, वह इस पत्र के साथ भेज रही हूँ। उसमें कुछ वजुभाई का लिखा हुआ है। वह जीवन-चरित्र दो-तीन वर्ष पूर्व का है, अत: अपूर्ण है। इसलिए शुरु से अभी तक का जीवनचरित्र लिखा जाए, ऐसा करना। यह जीवनचरित्र भेजा है, उसमें आपको ठीक लगे ऐसा लेना।

श्री प्रवचनसार की टीका के (-अनुवाद) विषय में परमकृपालु गुरुसाहेब बारबार कहते हैं कि—'श्री प्रवचनसार की टीका करे तो

हिम्मतभाई, दूसरा कोई नहीं।' श्री प्रवचनसार की टीका करने के विषय में एक कोई पण्डित का पत्र आया था। पूज्य साहेब ने कहा कि, ''करे तो 'हिम्मतभाई', दूसरा कोई नहीं''। पुनश्च, किसी-किसी को पूज्य साहेब कहा करते हैं कि, 'प्रवचनसार का अनुवाद होनेवाला है'। कोई ऐसा समझ लेते हैं कि, 'प्रवचनसार का अनुवाद हो रहा है।' अतः समाचारों में ऐसा आया कि, 'श्री प्रवचनसार का अनुवाद हो रहा है'। इसलिए इस विषय में उत्साहसह लक्ष्य देनेयोग्य है।

आपने सूरत आने के विषय में लिखा, परन्तु हाल, यहाँ सोनगढ़ में रहने का विचार है। पूज्य साहेब जहाँ विराजते होंगे वहाँ, कभी-कभी दर्शन करने जायेंगे और बाकी समय यहाँ रहेगे - ऐसा विचार है।

लि.

बहिन चम्पा के यथायोग्य

☆☆☆

प्रशममूर्ति बहिनश्री चम्पाबेन ने लिखकर भेजे हुए
परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेवश्री
कानजीस्वामी द्वारा पूछे हुए

तात्त्विक प्रश्नों के उत्तर

पूज्य सद्गुरुदेवश्री ने वि.सं. 1993 (ई.स. 1937) में
पूछे पाँच तात्त्विक प्रश्नों के बहिनश्री चम्पाबेन
द्वारा लिखकर भेजे गए उत्तर।

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन ने वि.सं. 1989 (ई.स. 1933) में सम्यग्दर्शन व आत्मानुभूति प्राप्त की, उसके पश्चात् परम पूज्य गुरुदेवश्री तत्त्वज्ञान और आत्मानुभूति आदि सम्बन्धित मौखिक प्रश्न कभी-कभी पूछते थे और बहिनश्री उनका मौखिक उत्तर देती थीं। जो सुनकर पूज्य गुरुदेवश्री को पूर्णतया सन्तोष और प्रमोद होता था। यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे, ये पाँच प्रश्न तो पूज्य सद्गुरुदेवश्री ने खास स्वहस्त से लिखकर भेजे थे और उसके उत्तर भी लिखित माँगे थे। जब बहुत शास्त्र पढ़े भी नहीं थे, ऐसी छोटी उम्र में अपने तत्त्वविचार तथा अनुभव के बल से पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन द्वारा दिये गये उत्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वहस्ताक्षर में लिखे हुए प्रश्नों के, पूज्य बहिनश्री द्वारा दिये गये उत्तर, मुमुक्षुजीवों के लाभ का कारण जानकर, यहाँ संकलित किये गये हैं, वे प्रश्न एवं उत्तर पढ़कर आत्मार्थी जीव अवश्य लाभान्वित होंगे।

मंगलकारी 'तेज' दुलारी

(राग : निरखी निरखी मनहर मूरत)

मंगलकारी [१]'तेज' दुलारी पावन मंगल मंगल है;
मंगल तव चरणों से मण्डित अवनी आज सुमंगल है,..... मंगलकारी०

श्रावण दूज सुमंगल उत्तम, [२]वीरपुरी अति मंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल, मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल जन्ममहोत्सव का यह अवसर अनुपम मंगल है,..... मंगलकारी०

मंगल शिशुलीला अति उज्ज्वल, मीठे बोल सुमंगल है,
शिशुवय का वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष्य लगाकर पाया अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है,..... मंगलकारी०

सागर सम गम्भीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरण में कुन्दप्रभु का दर्शन मनहर मंगल है;
सीमन्धर-गणधर-जिनधुनि का स्मरण मधुरतम मंगल है,..... मंगलकारी०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल है,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शान्त सुधीर सुमंगल है;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है,..... मंगलकारी०

दिनदिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपद में मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,
तव गुण को आदर्श बनाकर हम सब मंगलमाल लहें..... मंगलकारी०

---

१. तेजबा = पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की मातुश्री

२. वीरपुरी = पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का जन्मस्थान वर्धमानपुरी (वढवाण शहर)

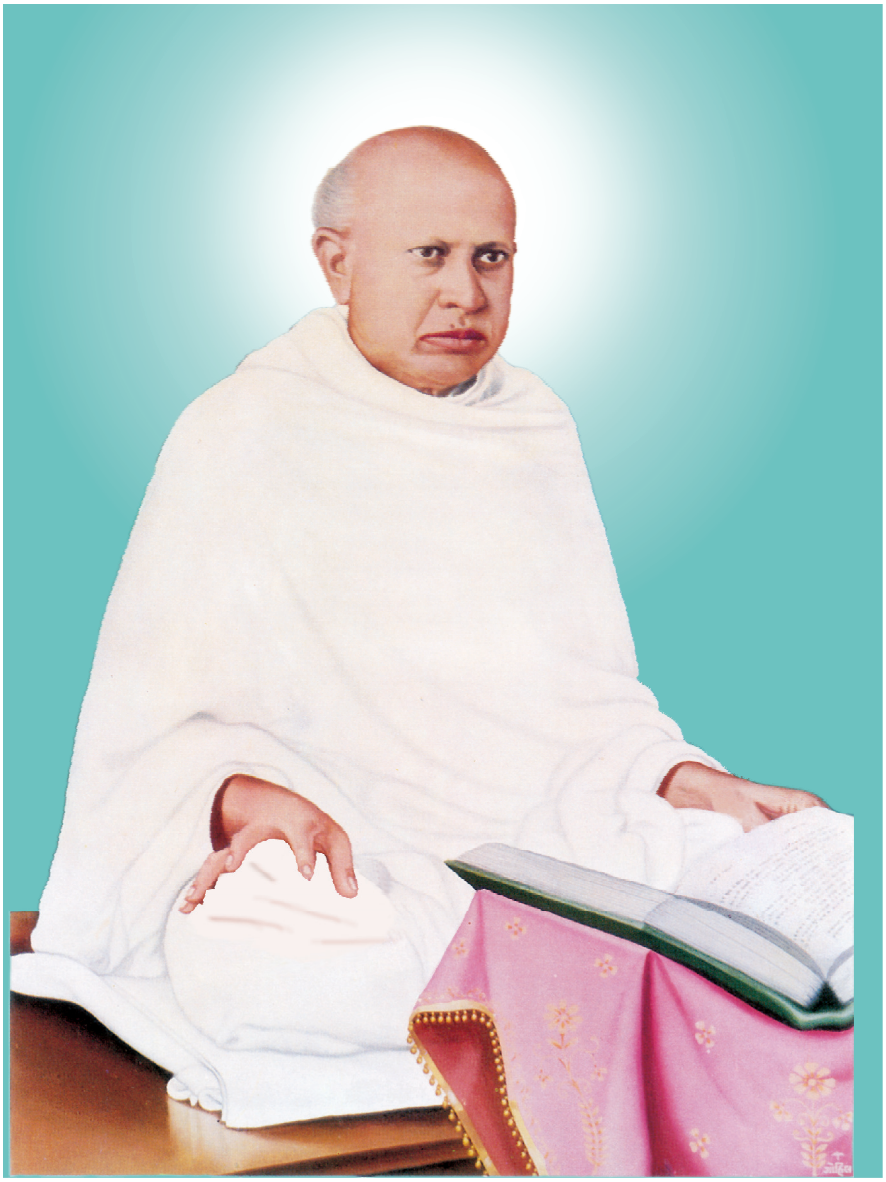

परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

પૂજ્ય સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામીએ (સ્વ. હસ્તાક્ષરે લખી) પૂછેલા

* પાંચ તાત્ત્વિક પ્રશ્નો *

ૐ

સહજ ચિદાનંદ

અગુરુ લઘુની વ્યાખ્યા શી રીતે કરી
શકો છો?

જ્ઞાન સવિકલ્પ છે તો અનુભવ વખતે
સવીકલ્પ કઈ રીતે છે તેની ઘટના કઈ રીતે છે?

સર્વજ્ઞની વ્યાખ્યા તમારી ભાષામાંથી
કેવી રીતે થઈ શકાય છે.

બૌદ્ધ વેદાંતાદિ કરતાં જૈનનું જુદાપણું
મુખ્ય મુદ્દા સહીત શું માનવામાં છે.

આત્મ આનંદ અને નિર્વીકલ્પતામાં
ભેદ અથવા કાળનું આંતરૂ શું છે,

તે પ્રશ્ન વાંચી તરત જવાબ આવે તે
લખવો,
સર્વોત્કૃષ્ટ પણ તમારી ભાષાથી કઈ
રીતે કરો છો,
બન્ને એ જુદું જુદું લખવું.

પરમ કૃપાળુ શ્રી સદ્‌ગુરુદેવ (કાનજી મહારાજશ્રી)
ના પરમ પવિત્ર હસ્તાક્ષરો
શ્રી ગુરુદેવના પૂછેલા સુંદર પ્રશ્નો

अध्यात्ममूर्ति युगसृष्टा परम पूज्य गुरुदेवश्री
कानजीस्वामी ने पूछे हुए

पाँच तात्त्विक प्रश्न

ॐ

सहज चिदानन्द

प्रश्न 1 : अगुरुलघु की व्याख्या किस तरह कर सकते हो ?

प्रश्न 2 : ज्ञान सविकल्प है, तो अनुभव के समय सविकल्प किस प्रकार से है ? उसकी घटना किस प्रकार से है ?

प्रश्न 3 : सर्वज्ञ की व्याख्या, आपकी भाषा से किस तरह हो सकती है ?

प्रश्न 4 : मान्यता में दूसरे वेदान्तादि से मुख्य विषय सहित 'जिन' (मत) का भिन्नपना कैसे है ?

प्रश्न 5 : आत्म आनन्द और निर्विकल्पता में भेद या काल का अन्तर क्या है ?

यह प्रश्न पढ़कर तुरन्त जो जवाब आये, वह लिखना।
सर्वोत्कृष्टरूप से अपनी भाषा में कैसे लिखते हो ?
दोनों अलग-अलग लिखें !

सातिशय ज्ञानप्रभावन्त पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लिखकर भेजे हुए

पाँच तात्त्विक प्रश्नों के

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन द्वारा लिखकर भेजे गये

उत्तर

प्रश्न पढ़कर गुरुदेवकी आज्ञा अनुसार तुरन्त ही सबसे प्रथम इस प्रश्न का उत्तर लिखा गया है।

(पूज्य गुरुदेव ने 'आत्म आनन्द तथा निर्विकल्पता में भेद अथवा काल के अन्तर के' बारे में पूछे गये प्रश्न का उत्तर)

प्रश्न 5 : आत्म आनन्द और निर्विकल्पता में भेद या काल का अन्तर कैसे है ?

उत्तर 5 : निर्विकल्पता, निर्विकल्पस्वभाव से वेदन में आती है और आत्म-आनन्द, आनन्दस्वभावरूप वेदन में आता है, इसलिए दोनों में भेद है। आत्मा एकरूप अभेद है। जिस क्षण में निर्विकल्पता प्रकटती है, उस ही क्षण, आत्म आनन्द प्रकटता है। इसलिए दोनों में काल का अन्तर नहीं है; इसलिए दोनों एकरूप अभेद है।

✪

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'अगुरुलघु' के बारे में पूछे गये प्रश्न का उत्तर)

प्रश्न 1 : अगुरुलघु की व्याख्या किस तरह कर सकते हो ?

उत्तर 1 : शुद्ध परिणाम से परिणमित द्रव्य के अगुरुलघुस्वभाव के विषय में ऐसा समझ में आता है कि, अपने स्वभाव से बाहर नहीं जाकर, स्वरूप में रहकर, द्रव्य के अनन्त स्वभावों में, किसी स्वभाव में, अन्य स्वभाव की अपेक्षा (तारतम्यतारूप से) एवं एक स्वभाव के एक अंश में,

सहज स्वभाव से तारतम्यतारूप से सहज परिणमन के कारण किसी गुण की विशेषता, किसी की हीनता तथा गुण के किसी अंश की हीनता, किसी की विशेषतारूप द्रव्य परिणमित होने से, परिणमन बढ़ जाने से, गुण बढ़ गया दिखता है, अंश बढ़ गये दिखते हैं। परिणमन घट जाने के कारण अंश घट गये दिखते हैं। परिणमनस्वभाव कोई अद्‌भुत है। गुण, पर्याय सर्व अभेद हैं। तारतम्यतारूप परिणमना, वह द्रव्य का सहज स्वभाव है। विभावपरिणामी द्रव्य के परिणमन की हीनाधिकता, पर निमित्त के कारण होती है। उपादानरूप से तो स्वयं स्वतन्त्र परिणमता है।

अगुरुलघुस्वभाव न्याय की पद्धति से पूरा नहीं आता; स्पष्टरूप नहीं आता, फिर भी जिस तरह यथाशक्ति आया, उस रूप से लिखा है।

☆

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'अनुभव के काल में ज्ञान की सविकल्पता' बारे में पूछे हुए प्रश्न का उत्तर)

प्रश्न 2 : ज्ञान सविकल्प है, तो अनुभव के समय सविकल्प किस प्रकार से है ? उसकी घटना किस प्रकार से है ?

उत्तर 2 : निर्विकल्पता के समय, चैतन्य द्रव्य के भिन्न-भिन्न स्वभावों से, केलीस्वरूप-तरंग उछल रहे हैं; उसका वेदन, उसको जानना, वह ज्ञान की सविकल्पता है।

अनुभव के समय, द्रव्य का भिन्न-भिन्न स्वभाव से क्रियात्मकपना और अलग-अलग प्रकार से क्रियात्मकपना, उस परिणमन का ज्ञान में, सहज निर्विकल्परूप वेदन, वह ज्ञान की सविकल्पता समझ में आती है। एकरूप, अनेकता का वेदन होने पर भी, अनेकता का वेदन वह ज्ञान की

सविकल्पता है। उस अनेकता का वेदन ज्ञान द्वारा जाना जाता है, वह ज्ञान की सविकल्परूपता है। भेदरूप विशेष पर्याय को जाननेवाला ज्ञान है। निश्चय से द्रव्यपिण्ड अभेदस्वरूप परिणमता है, फिर भी व्यवहार से भेद अवस्थारूप परिणमता है।

☆

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'सर्वज्ञ की व्याख्या' के बारे में पूछे हुए प्रश्न का उत्तर)

प्रश्न 3 : सर्वज्ञ की व्याख्या, आपकी भाषा से किस तरह हो सकती है ?

उत्तर 3 : स्वपरप्रकाशक स्वभाववाला ज्ञान, अपनी सम्पूर्ण तरंगरूप पर्याय में सहज परिणमनकर, स्वस्वभाव में प्राकृतिक तथा प्रकृति के अनुरूप परिणमता है, उसका नाम सर्वज्ञता।

बाह्य से परज्ञेयों को जानने पर भी, अभ्यन्तर में अपनी ही ज्ञानतरंगरूप पर्याय में परिणमन करता है। प्राकृतिक ज्ञाता स्वयं स्वभाव के अनुरूप परिणमता है। 'बाह्य प्राकृतिक अन्य द्रव्य'; 'अभ्यन्तर प्राकृतिक स्वयं', सम्पूर्ण पर्याय में प्रकट परिणमता है। जहाँ कोई अंश अपूर्ण नहीं है, जहाँ स्वलक्ष्य पूर्ण हो गया है। स्वलक्ष्य (स्व-उपयोग) पूर्ण परिणमित होकर, ज्ञान का स्वपर ज्ञायकरूप पूर्ण परिणमना, उसका नाम सर्वज्ञता है।

☆

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'वेदान्त से जैन का अलगपना' के बारे में पूछे हुए प्रश्न का उत्तर)

प्रश्न 4 : मान्यता में दूसरे वेदान्तादि से मुख्य विषय सहित 'जिन'(मत) का भिन्नपना कैसा है ?

उत्तर 4 : वेदान्त अकेली शुद्धता और अभेदता को मानता है; जिससे अखण्ड स्वभाव का ग्रहण नहीं होता है। विभाव परिणामीपना सर्वथा नहीं स्वीकारने से, स्वभाव में आने का प्रयत्न नहीं रहता है।

वेदान्ती एकान्त शुद्धता को मानता होने से, रत्नत्रय परिणति को नहीं स्वीकारता; अन्तर की साधकदशा उसे प्रकट नहीं होती। एकान्त शुद्धता स्वीकार करता होने से, अन्य पहलू की अशुद्ध परिणति को सर्वथा नहीं स्वीकारता।

वेदान्त और जैन का मुख्य (विषय) भेद—

वेदान्त एकान्त से अभेदता और शुद्धता को मानता है। वह यथार्थ नहीं है। जैन किसी अपेक्षा से, भेद व अशुद्धता की मान्यता को अपेक्षा सहित, अभेद दृष्टि एवं शुद्ध द्रव्यदृष्टि को स्वीकारता है। उसमें शुद्ध दृष्टि की मुख्यता वह यथार्थ है; जिससे यथार्थ स्वानुभूति होती है। चैतन्य का अनुपम स्वरूप प्रकट होता है।

वेदान्त की मानी हुई एकान्त शुद्धता, वह यथार्थ नहीं है। उसकी मानी हुई एकान्त अभेदता, वह यथार्थ नहीं है। स्व और पर—ऐसे दो द्रव्य होने पर भी 'जगत में दूसरे द्रव्य ही नहीं हैं' ऐसी उनकी मान्यता है। पर्यायरूप भेददृष्टि को वे स्वीकारते नहीं है, अथवा द्रव्य का परिणमन स्वभाव होने पर भी, वे स्वीकार नहीं करते हैं।

यथार्थ ज्ञान हो तो ही भेदज्ञान और शुद्ध परिणति प्रकटती है।

पर्याय को (वेदान्त) नहीं स्वीकारने से, द्रव्य के अखण्ड स्वभाव का ग्रहण नहीं होता है; द्रव्य और पर्याय—दोनों पहलू का ग्रहण नहीं होता है; जिससे उसकी मानी हुई, एकान्त शुद्धता भी सत्य साबित नहीं होती है।

चैतन्य की वेदनपरिणति की अपेक्षा ली जाय तो, चैतन्य की ज्ञानरूप वेदनपरिणति में, द्वैतपना और अशुद्धता उपस्थित होने पर भी, वेदान्त उसका स्वीकार नहीं करता, (परन्तु) अकेली शुद्धता एवं अद्वैतपना स्वीकारता है।

जैन में और वेदान्त में द्वैतपना-अद्वैतपना और शुद्धता-अशुद्धता आदि में मुख्य भेद हैं। वस्तुस्थिति जैसी है, वैसी है। यथार्थ दृष्टि हुए बिना अनुभूति भी यथार्थ नहीं हो सकती।

वेदान्त परद्रव्य में व्यापकपना मानता है। जैन परद्रव्य का ज्ञान अपना मानता है, परन्तु परद्रव्य में व्यापकपना नहीं मानता है। दोनों द्रव्यदृष्टि से एक जैसे दिखते हैं—ऐसा कहा जा सकता है, व्यवहारदृष्टि से अलग पड़ते हैं। जिससे सभी पहलू का निषेध होता है। साधकस्थिति-साध्य, द्रव्य-पर्याय, ज्ञान-ज्ञेय, निमित्त-नैमित्तिक, शुद्धता-अशुद्धता आदि सर्व का निषेध होता है।

यथार्थ साधना में, शुद्ध द्रव्यदृष्टि की मुख्यतापूर्वक पर्याय का ज्ञान साथ में रहता है, अत: शुद्ध पर्याय प्रकट होती है।

ज्ञान अतिगम्भीर है। यथाशक्ति लिखा गया है। द्रव्य और भाव से सम्पूर्ण सहज स्थिति ही चाहिए। यह ही भावना है। सहज में, सहज पूर्ण परिणमित हो जाए, यह ही भावना है।

वीतराग स्वरूप को नमस्कार। श्री सत्पुरुषों को नमस्कार।

परम उपकारी ज्ञाननिधि कहान-गुरुदेव के चरणों में नमस्कार।

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन ने पूज्य गुरुदेवश्री को बताई हुई

स्वयं की अन्तरंगदशा

(लगभग वि. सं. 1992; ई.स. 1936)

परम कृपालु प्रभुश्री,

मेरी अन्तरंग-दशा सम्बन्धित आपको बताने के भाव होने से लिखा जा रहा है। आप मेरी अन्तरंग-दशा जानें, उसमें इस आत्मा को विशेष लाभ रहा है, इसलिए लिखा जा रहा है।

एक ओर से देखते, विचारते, ऐसा होता है कि, मेरी अन्तरंगदशा अन्य कोई जाने, वह मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगता है और दूसरी ओर से विचारने पर ऐसा होता है कि, गुरुदेव (इसे) जाने, उसमें इस आत्मा का विशेष लाभ रहा है, इसलिए लिखा जा रहा है। इस अन्तरंगदशा में आपका प्रताप है, आपका उपकार है।

गुरुदेव! ज्ञाताधारा की उग्रता वर्तती रहती है। वाँचन आदि की ओर उपयोग जाता है, उस अनुसार वह कार्य यथाशक्ति हुआ करता है और ज्ञाता की ओर का ध्यान व ज्ञाता की ओर की उग्रता रहा करे, ऐसी परिणति वर्तती रहती है।

प्रभु! (गुजराती) श्रावण कृष्णा अमावस्या से, इस आत्मा की कोई सहज एक धारावाही दशा प्रकट हुई है, कोई अद्‌भुतदशा प्रकट हुई है। अन्तरंग में बहुत उल्लास आता है तथा अन्तर आत्मा की निर्विकल्प-दशा, आनन्द-दशा, विशेष सहजता को और विशेषता को प्राप्त हुई है। यह आपका प्रताप है। मात्र (आपकी) जानकारी के लिए लिखा है। अन्तरंग

में बहुत उल्लास आने से, लिखा जा रहा है। चारित्र की साधना अभी बाकी है, फिर भी लिखी जाती है।

गुरुदेव से दूर रहते हैं, उसका खेद रहता है। यद्यपि ज्ञाता प्रभु चैतन्य में खुद नहीं। जो होता है, वह दिखता है, फिर भी उदयरूप खेद आ जाता है। बहुत दिन हुए, कहने के भाव होते थे। आज भावना बढ़ जाने से लिखने के भाव हो गये हैं।

गुरुदेव जाने, उसमें इस आत्मा का लाभ रहा हुआ है, अतः बताया जा रहा है।

इस आत्मा की दशा में आपका परम प्रताप है, परम उपकार है।

अन्तरंगदशा सम्बन्धित और शास्त्रों से सम्बन्धित आपके प्रश्न, इस आत्मा को लाभदायक हैं।

पूज्य बहिनश्री की व्यक्तिगत नोंध

वि. सं. 1992 (ई.स. 1936)

श्री सद्गुरुदेव को नमस्कार,

केवलज्ञान होने के पश्चात्—'आत्मस्वभाव' के पूर्ण परिणमन पश्चात्–केवली ऊपर आकाश में चले उसका कारण, यह समझ में आता है कि आत्मद्रव्य का परिणमन कुदरत के साथ पूर्ण परिणमित होने से, कृत्रिमता छूट जाती है। द्रव्य स्वयं स्वाधाररूप से परिणमित हो रहा होने से, उसे बाह्य से भी परावलम्बन छूट जाता है। सहज स्वभाव, जो आकाशद्रव्य के साथ निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध, वह रह जाता है। (वर्तमान में) जमीन का आश्रय (जो है), वह सहज नहीं है, परन्तु कृत्रिम है।

बहिनश्री के हृदय में स्थित गुरुमहिमा

गुरुदेव पंचम काल में भरतक्षेत्र में पधारे, यह अपना महाभाग्य है। गुरुदेव भारत के तारणहार हैं। गुरुदेव ने स्वानुभूति का पन्थ प्रकाशित किया है, मुक्तिमार्ग चारों पहलू से स्पष्ट करके प्रकाशित किया है। गुरुदेव ने भारत के जीवों पर अपूर्व उपकार किया है; मुक्ति के पन्थ की ओर मोड़ा है।

गुरुदेव अनेक गुणों से भरपूर महिमावन्त हैं। गुरुदेव के आत्मा में, आश्चर्यकारी श्रुतज्ञान के दीपक प्रकाशित हो रहे हैं। गुरुदेव की वाणी अनेक अतिशयता से भरपूर चमत्कारी है, अन्तर आत्मा में अपूर्व श्रुत की परिणति प्रकटानेवाली है। गुरुदेव की आत्मस्पर्शी स्वानुभवरस झरती वाणी, स्वरूप-परिणति प्रकटानेवाली, भवसमुद्र को तिरानेवाली महिमावन्त है।

गुरुदेव अनन्त गुणों से शोभायमान दिव्य विभूति हैं। दिव्य उनका ज्ञान है, दिव्य उनकी वाणी है। गुरुदेव का आत्मद्रव्य अलौकिक है, महिमावन्त है।

इस आत्मा पर—इस दास पर गुरुदेव के अनेकविध अनन्त-अनन्त उपकार हैं। गुरुदेव के गुणों का, उनके उपकारों का क्या वर्णन हो! उनके चरणों में बारम्बार परम भक्ति से नमस्कार।

क्या प्रभु चरण निकट धरुं, आत्मा से सब हीन;
वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तुं चरणाधीन॥

☆

गुरुदेव : एक अचम्भा

ऐसे काल में परम पूज्य गुरुदेवश्री ने आत्मा प्राप्त किया, इसलिए परम पूज्य गुरुदेव एक अचम्भा है। इस काल में दुष्कर में दुष्कर प्राप्त किया; स्वयं अन्तर से मार्ग प्राप्त किया और दूसरों को मार्ग बतलाया, इसलिए उनकी महिमा आज तो गायी जाती है परन्तु हजारों वर्षों तक भी गायी जायेगी।

भव्योमां दिलमां दीवडा प्रगटावनार

(राग : सोहागमूर्ति शी रे के)

जन्मवधाईना रे के सूर मधुर गाजे साहेलडी,
तेजबाने मंदिरे रे के चोघडियां वागे साहेलडी;
कुंवरीनां दर्शने रे के नरनारी हरखे साहेलडी,
वीरपुरी धाममां रे के कुमकुम वरसे साहेलडी।

(साखी)

सीमंधर-दरबारना, ब्रह्मचारी भडवीर;
भरते भाण्या भाग्यथी, अतिशय गुणगंभीर।

नयनोना तेजथी रे के सूर्यतेज लाजे साहेलडी,
शीतळताना चंद्रनी रे के मुखडे विराजे साहेलडी;
उरनी उदारता रे के सागरना तोले साहेलडी,
फूलनी सुवासता रे के बेनीबाना बोले साहेलडी.... जन्म।

(साखी)

ज्ञानानंदस्वभावमां, बाळवये करी जोर;
पूर्वाराधित ज्ञाननो, सांध्यो मंगल दोर।

ज्ञायकना बागमां रे के बेनीबा खेले साहेलडी,
दिव्य मति-श्रुतनां रे के ज्ञान चडयां हेले साहेलडी;
ज्ञायकनी उग्रता रे के नित्य वृद्धि पामे साहेलडी,
आनंदधाममां रे के शीघ्र शीघ्र जामे साहेलडी.... जन्म।

(साखी)

समवसरण-जिनवर तणो, दीधो इष्ट चितार;
उरमां अमृत सींचीने, कर्यो परम उपकार।

सीमंधर-कुंदनी रे के बात मीठी लागे साहेलडी,
अंतरना भावमां रे के उज्ज्वणता जागे साहेलडी;
खम्मा मुज मातने रे के अंतर उजाल्या साहेलडी,
भव्योनां दिलमां रे के दीवडा जगाव्या साहेलडी। ....जन्म।

प्रशममूर्ति पूज्य बहनश्री चम्पाबेन

आवी श्रावणनी बीजलडी

(राग : इपला रातलडीमां)

आवी श्रावणनी बीजलडी आनंददायिनी हो बेन,
– सुमंगलमालिनी हो बेन!
जन्म्यां कुंवरी माता-'तेज'-घरे महापावनी हो बेन,
– परम कल्याणिनी हो बेन!
उतरी शीतणतानी देवी शशी मुख धारती हो बेन,
– नयनयुग ठारती हो बेन!
निर्मल आंखलडी-सूक्षम-सुमति-प्रतिभासिनी हो बेन
– अचल तेजस्विनी हो बेन!

(साखी)

मातानी बहु लाडिली, पितानी काणज-कोर;
बंधुनी प्रिय बहेनडी, जाणे चंद्र-चकोर।
बहेनी बोले ओछुं, बोलाव्ये मुख मलकती हो बेन,
-कदीक फूल वेरती हो बेन!
सरला, चित्त उदारा, गुणमाला उरधारिणी हो बेन,
-सदा सुविचारिणी हो बेन!....आवी।

(साखी)

वैरागी अंतर्मुखी, मंथन पारावार;
ज्ञातानुं तल स्पर्शीने, कर्यो सफल अवतार।
ज्ञायक-अनुलग्ना, श्रुतदिव्या, शुद्धिविकासिनी हो बेन,
-परमपदसाधिनी हो बेन!
संगविमुख, एकल निज-नंदनवन-सुविहारिणी हो बेन,
-सुधा-आस्वादिनी हो बेन!....आवी।

(साखी)

स्मरणो भव-भवनां इडां, स्वर्णमयी इतिहास,
-दैवी उर-आनंदिनी 'चंपा' पुष्प-सुवास।
कल्पलता मणी पुण्योदयथी चिंतितदायिनी हो बेन,
-सकल दु:खनाशिनी हो बेन!
मुक्ति वरुं-मनरथ ऐ मात पूरा वरदायिनी हो बेन,
– महाबलशालिनी हो बेन! ....आवी।

परम पूज्य गुरुदेवश्री तथा उनकी सातिशय वाणी का

उपकार और महिमा

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के स्वहस्ताक्षर में)

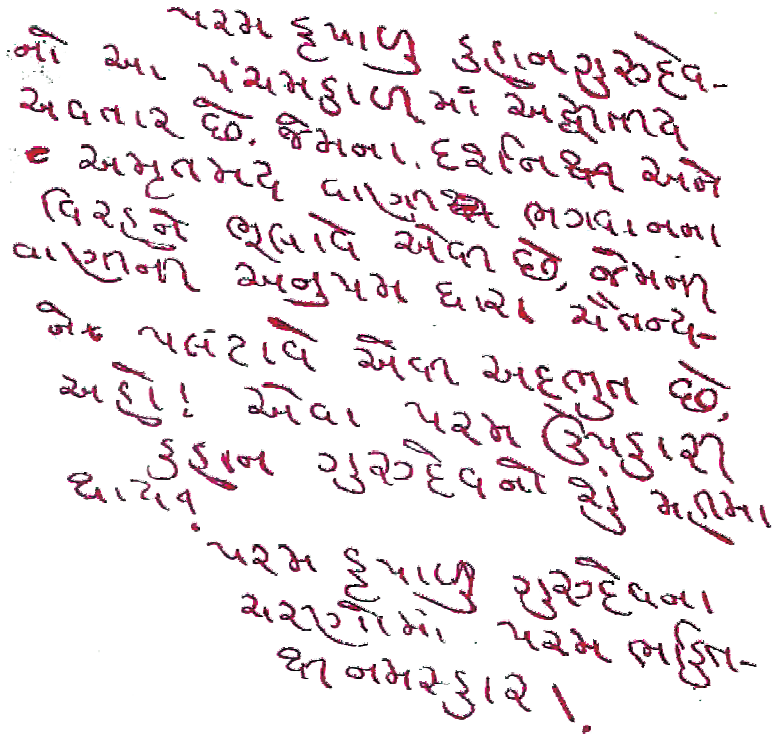

परमकृपालु कहान गुरुदेव का इस पंचम काल में अद्वितीय अवतार है। जिनके दर्शन और अमृतमय वाणी भगवान के विरह को भूलाये ऐसी है, उनकी वाणी की अनुपमधारा चैतन्य को पलटाये, ऐसी अद्‌भुत है, अहो! ऐसे परम उपकारी कहान गुरुदेव की क्या महिमा हो!

परमकृपालु गुरुदेव के चरणों में परमभक्ति से नमस्कार।

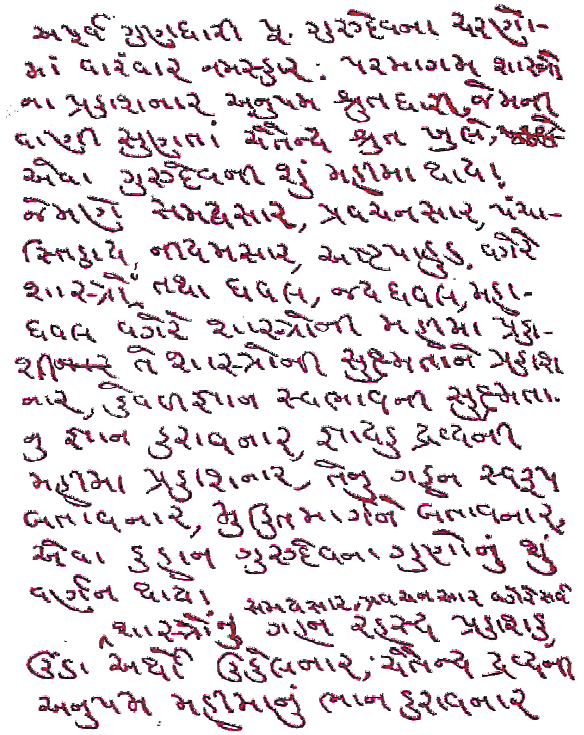

अपूर्व गुणधारी पूज्य गुरुदेव के चरणों में बारम्बार नमस्कार। परमागम शास्त्रों को प्रकाशित करनेवाले अनुपम श्रुतधारी, जिनकी वाणी सुनते चैतन्य श्रुत खुलता है, ऐसे गुरुदेव की क्या महिमा हो!

जिन्होंने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि शास्त्रों तथा धवल, जयधवल, महाधवल इत्यादि शास्त्रों की महिमा प्रकाशित करके उन शास्त्रों की सूक्ष्मता को प्रकाशित करनेवाले, केवलज्ञान स्वभाव की सूक्ष्मता का ज्ञान करानेवाले, ज्ञायकद्रव्य की महिमा प्रकाशित करनेवाले, उनका गहन स्वरूप बतानेवाले, मुक्तिमार्ग को बतानेवाले ऐसे कहानगुरुदेव के गुणों का क्या वर्णन हो!

समयसार, प्रवचनसार आदि सर्व शास्त्रों के गहन रहस्य प्रकाशक, गहरे अर्थ खोलनेवाले, चैतन्यद्रव्य की अनुपम महिमा का भान करानेवाले,

સમ્યક્માર્ગ દોરનાર, જેમના મુખ
કમળથી અમૃતધારા વરસે છે, જેમના
ચૈતન્યના પ્રદેશે પ્રદેશે શ્રુતજ્ઞાનના
દીપક પ્રકાશી રહ્યા છે, શ્રુતના પર્યાયો
પ્રગટી રહ્યા છે, જેઓ શ્રુતરસમાં
તરબોળ છે, એવા જ્ઞાનાવતારી મહિ-
માવંત દિવ્યમૂર્તિ કહાન ગુરુદેવ આ
ભારતમાં અજોડ છે. તે દિવ્યમૂર્તિના
દર્શનથી, જેમની શ્રુતધારાના દર્શન-
થી શ્રવણથી ચૈતન્યમાં સુખાદિ નિધિ
પ્રગટે, એવા ગુરુદેવના ચરણ કમળમાં
હૃદય વારંવાર નમી પડે છે, અંતર
ઉલસી પડે છે

પરમ કૃપાળુ ગુરુદેવના ચરણ-
કમળમાં વારંવાર પરમ ભક્તિથી
વંદન હો.

सम्यक्मार्ग के पथप्रदर्शक, जिनके मुखकमल से अमृतधारा बरसती है, जिनके प्रत्येक चैतन्य के प्रदेश से, श्रुतज्ञान के दीपक प्रकाशित हो रहे हैं, श्रुत की पर्यायें प्रकट रही हैं, जो श्रुतरस में तरबतर हैं, ऐसे ज्ञानावतारी महिमावन्त दिव्यमूर्ति कहान गुरुदेव इस भारत में अजोड़ हैं। उन दिव्यमूर्ति के दर्शन से, उनकी श्रुतधारा के दर्शन से, श्रवण से, चैतन्य में सुखादि निधि प्रकट हो। ऐसे गुरुदेव के चरणकमल में हृदय बारम्बार झुक जाता है, अन्तर उल्लसित हो जाता है।

परमकृपालु गुरुदेव के चरणकमल में बारम्बार परम भक्ति से वन्दन हो।

પરમ ઉપકારી, ભરતક્ષેત્રમાં અપૂર્વ
શ્રુતધારા વરસાવનાર, મંગળમૂર્તિ
ગુરુદેવને પરમ ભક્તિથી નમસ્કાર.

શ્રી કહાનગુરુદેવના પાવનકારી
આહારદાનના પ્રસંગો તેમજ પૂ. ગુરુદેવના
શ્રી જિનેન્દ્ર પ્રતિમાઓના કલ્યાણક અવસરો
તીર્થયાત્રાનો અવસરો, વગેરે પુનિત
પ્રસંગો તે બધા પુણ્યોદયે બને છે તે પ્રસંગો
યાદ કરતાં ઉલ્લાસ આવે છે.

શ્રી ગુરુદેવના અંતરમાં પ્રગટેલા
ઝળહળતાં શ્રુતજ્ઞાન સુર્ય દ્વારા અનુપમ
રહસ્યો ઝરતી અમૃત વાણી નિરંતર
સુણવાનો અપૂર્વયોગ પ્રાપ્ત થયો છે
તે મહાભાગ્ય છે.

ગુરુદેવની નિરંતર વાણી તેમના
આહારદાન વગેરેના પાવન પ્રસંગો જે
પંચમકાળે મળ્યા છે તે અહોભાગ્ય છે.

परम उपकारी, भरतक्षेत्र में अपूर्व श्रुतधारा बरसानेवाले, मंगलमूर्ति गुरुदेव को परम भक्ति से नमस्कार।

श्री कहानगुरुदेव के पावनकारी आहारदान के प्रसंग, एवं उसी तरह पूज्य गुरुदेव के साथ तीर्थयात्रा के अवसर, श्री जिनेन्द्र प्रतिमाओं के कल्याणक अवसर आदि पुनीत प्रसंग, वे सब पुण्योदय से बनते हैं, उन प्रसंगों को याद करते हुए उल्लास आता है।

श्री गुरुदेव के अन्तर में प्रकटे हुए, जाज्वल्यमान श्रुतज्ञानसूर्य द्वारा अनुपम रहस्य झरती अमृतवाणी निरन्तर सुनने का अपूर्वयोग प्राप्त हुआ है, वह महाभाग्य है।

गुरुदेव की निरन्तर वाणी, उनके आहारदान आदि के पावन प्रसंग जो पंचम काल में मिले हैं, वे अहोभाग्य है।

અનંતકાળના પરિભ્રમણનું દુઃખ
અને વિભાવનું દુઃખ સર્વ પરદ્રવ્ય
પરભાવોને ભેદભાવોથી ન્યારા શુદ્ધાત્મ
તત્ત્વને બતાવનારી ગુરુદેવની વાણીથી
સહજે ટળે છે.
પૂ. ગુરુદેવે શુદ્ધાત્મ તત્ત્વને
પ્રગટ કરવાનો માર્ગ બતાવી

પંચમકાળમાં અનેક જીવોના દુઃખ
ટાળ્યા છે, સુખધામ, આનંદધામ
આત્માને પ્રગટ કરવાનો માર્ગ
સુગમ કર્યો છે.
પરમ પરમ ઉપકારી ગુરુદેવના
ચરણકમળોમાં પરમ ભક્તિથી
વારંવાર નમસ્કાર.

अनन्त काल के परिभ्रमण का दुःख और विभावों का दुःख, सर्व परभावों के भेदभावों से भिन्न, शुद्धात्मतत्त्व को दिखानेवाली, गुरुदेव की वाणी से सहज टलता है।

पूज्य गुरुदेव ने शुद्धात्मतत्त्व को प्रकट करने का मार्ग बताकर, पंचम काल में अनेक जीवों के दुःख टाले हैं, सुखधाम, आनन्दधाम, आत्मा को प्रकट करने का मार्ग सुगम किया है।

परम परम उपकारी गुरुदेव के चरणकमलों में परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार।

અહો! શ્રી સદ્‌ગુરુદેવ! મારા જેવા પામર
ઉપર આપે અપાર કરુણા વરસાવી છે. આપની
શું સેવા ભક્તિ કરીએ! જે કરીએ તે બધું ઓછું છે.
મન વચન કાયાએ કરી નિરંતર સમીપપણે
આપની ચરણસેવા હોજો એ હૃદયની ઊંડી
ભાવના છે. આ કાળે આ ભરતક્ષેત્રમાં આપે
આપની જાતે છૂપાએલો મોક્ષમાર્ગ શોધીને બીજા-
ને તે માર્ગ સમજાવી અપૂર્વ ઉપકાર કર્યો છે.
અહો! ગહન અને ઊંડું વસ્તુનું સ્વરૂપ સૂક્ષ્મ ને
તીક્ષ્ણ શ્રુત શૈલીથી સમજાવી જ્ઞાનના રહસ્યો
ખોલીને અમારા જેવા પામર ઉપર અનંત
અનંત ઉપકાર કર્યો છે. અહો! પ્રભુ! અમે આપ-
ની ભક્તિ સેવા સિવાય બીજું શું કરી શકીએ!
આપના ચરણકમળમાં પરમ ભક્તિથી વારંવાર નમસ્કાર નમસ્કાર.

अहो! श्री सद्‌गुरुदेव! मेरे जैसे पामर पर आपने अपार करुणा बरसाई है। आपकी क्या सेवा-भक्ति करें! जो करें, वह सब कम है। मन, वचन, काया द्वारा निरन्तर समीपरूप से आपकी चरणसेवा हो, यह ही हृदय की गहरी भावना है। इस काल में, इस भरतक्षेत्र में छुपा हुआ मोक्षमार्ग आपने स्वयं ही ढूँढ़कर, अन्यों को वह मार्ग समझाकर अपूर्व उपकार किया है। अहो! गहन और गहरा वस्तु का स्वरूप, सूक्ष्म और तीक्ष्ण श्रुत शैली से समझाकर, ज्ञान के रहस्यों को खोलकर, हमारे जैसे पामर पर अनन्त-अनन्त उपकार किये हैं। अहो! प्रभु! हम आपकी भक्ति-सेवा के अलावा अन्य क्या कर सकते हैं! आपके चरणकमलों में परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार।

कल्याणकारी अमृतवचन

बहुत वर्ष पूर्व स्वानुभवपरिणत प्रशममूर्ति
पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन द्वारा उनकी
भाभी सुशीलाबेन को उद्‌बोधित अमृतवचन
(स्वहस्ताक्षर में)

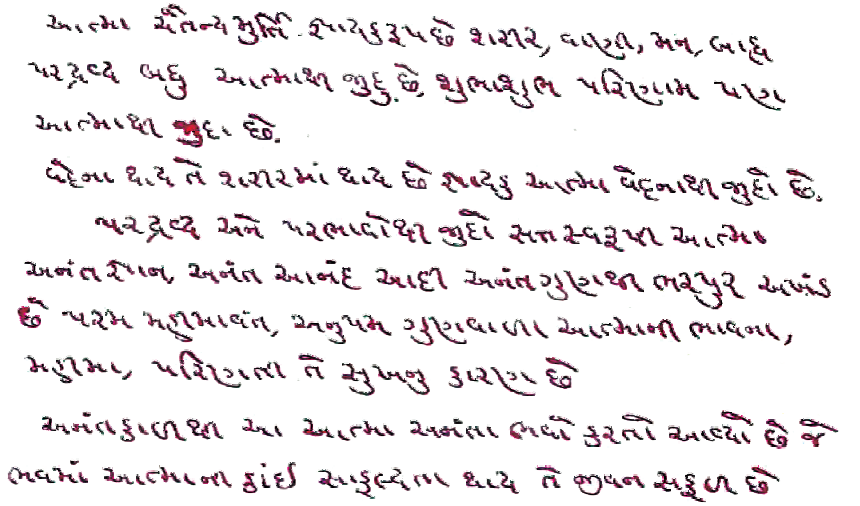

आत्मा चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वरूप है। शरीर, वाणी, मन, बाह्य परद्रव्य, सब आत्मा से भिन्न है। शुभाशुभ परिणाम भी आत्मा से भिन्न है।

वेदना होती है, वह शरीर में होती है। ज्ञायक आत्मा वेदना से अन्य है।

परद्रव्य और परभावों से भिन्न, सत्स्वरूपी आत्मा, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि अनन्त गुण से भरपूर अखण्ड है। परम महिमावन्त अनुपम गुणवाले आत्मा की भावना, महिमा, परिणति, वह सुख का कारण है।

अनन्त काल से यह आत्मा अनन्त भव करता आया है। जिस भव में आत्मा की कुछ सफलता हो, वह जीवन सफल है।

શ્રી જિનેંદ્રદેવ, શ્રી ગુરુદેવ, શ્રી શાસ્ત્રજી તે સર્વની અપૂર્વ મહિમા
અને ચૈતન્યદેવની અપૂર્વ મહિમા તેનું રટન આદિ કરવા યોગ્ય છે
અનુપમ આત્માનો અપૂર્વ મુક્તિમાર્ગ બતાવ્યો એવા ગુરુદેવ
અને તેમની વાણીનું ચિંતવન કરવા યોગ્ય છે.
જીવનની સફળતા થાય તેમ કરવા યોગ્ય છે.

હું એક શુદ્ધ સદા અરૂપી જ્ઞાન દર્શનમય ખરે
કંઈ અન્ય તે મારું જરા પરમાણુમાત્ર નહીં અરે

(શ્રી સમયસાર)

સુખધામ અનંત સુસંત ચહી
દિનરાત રહે તદ્ ધ્યાનમહી
પ્રશાંતિ અનંત સુધામય જે
પ્રણમું પદ તે વરતે જયતે

(શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર)

श्री जिनेन्द्रदेव, श्री गुरुदेव, श्री शास्त्रजी, उन सर्व की अपूर्व महिमा और चैतन्यदेव की अपूर्व महिमा, उनका रटन आदि करनेयोग्य है। अनुपम आत्मा का अपूर्व मुक्तिमार्ग बताया, ऐसे गुरुदेव और उनकी वाणी का चिन्तवन करना योग्य है।

जीवन की सफलता हो वैसा करना योग्य है।

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दर्शनमय खरे,
कुछ अन्य वह मेरा नहीं, परमाणुमात्र भी अरे! (श्री समयसार)

सुखधाम अनंत सुसंत चहि,
दिनरात रहे तद् ध्यान मही,
प्रशांति अनंत सुधासम जे,
प्रणमुं पद ते वर्ते जयते। (श्रीमद् राजचन्द्र)

पत्रव्यवहार....

वि.सं. 1991, चैत्र सु-6
(ई.स. 1935, उम्र-21 वर्ष) वांकानेर

.....।

हे श्री वीतराग! अब तो आपके चरणकमल सेवन की बहुत भावना हो जाती है।

स्वरूप के अलावा कार्मण थैली के निमित्त से प्रकट होता समस्त शुभाशुभ परभाव, वह भाररूप और उपाधिरूप है। उसके प्रति कई बार सहजरूप से विशेष उदासीनता आ जाती है, और उसकी थकान लगकर —उस प्रवृत्ति से और उस परिणति से थकान लगकर चैतन्यप्रभु, उनसे विशेष उदास होकर स्वस्वरूप में सहजरूप से विशेष स्थित होते हैं।

अन्तरंग स्थिति ऐसी होने पर कितनी बार बाह्य संग-प्रसंग के प्रति भी उदासीनता आ जाती है, और वे बाह्य संग-प्रसंग उपाधिरूप और भाररूप लगते हैं। उसमें भी अप्रशस्त परिचय विशेषरूप से अरुचिकर लगते हैं; क्योंकि उनका अपनी आत्मस्थिति के साथ सुमेल नहीं है।

प्रशस्त परिचय में कितने ही संग-प्रसंग प्रवृत्तिरूप लगने से, वे भी उपाधिरूप और भाररूप लगते हैं। अपूर्णता के कारण वैसे प्रसंगों में खड़ा रह जाता है, परन्तु उपयोग वहाँ से पलट जाता है।

जिस समय असंगदशा से एकान्तवास में मुनिवर विचरते होंगे, उस काल को धन्य है।

इस काल में, इस क्षेत्र में अपना जन्म, वह कई साधनों की दुर्लभता

बताता है; फिर भी असीम उपकारी, अपूर्ववाणी प्रकाशक, अपूर्व ऐसे कहान गुरुदेव, इस काल में मिले हैं, यह महाभाग्य है। उनके कारण से आत्मसाधना की सुलभता है।

जब द्रव्य-क्षेत्र-काल स्वरूपसाधक आत्माओं का समागम होनेरूप परिणमित होगा, तब वह प्राप्ति होनेरूप योग बनेगा।

जहाँ पूर्णता नहीं, वहाँ देव, गुरु और उनकी वाणी की ओर प्रशस्तभाव आये बिना नहीं रहता। यही ही।

लि.
श्री परम उपकारी गुरुदेव की
तथा वीतरागदेव की
कल्पद्रुम समान छाया की इच्छुक

हे गुरुदेव! आपसे दूर रहने का विरह सहन नहीं होता।

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1992
(ई.स. 1936, उम्र-22 वर्ष)
शनिवार, वैशाख कृष्ण-12

.....।

जगदुद्धारक अद्भुत गुरुदेव को बारबार नमस्कार!

अभी मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ रही हूँ; ठीक पढ़ा जाता है। दोपहर में, पूज्य कृपालु गुरुदेवश्री के प्रवचन में, परमात्मप्रकाश पूरा हो गया है। अभी दो-तीन दिन श्रीमद् के पत्र पढ़े जायेंगे; पश्चात् राजकोट के प्रवचन पढ़े जायेंगे—ऐसा दिखाई देता है। गुरुदेव की तबियत अच्छी है।

कल मेरा समय मुख्यरूप से वांचन, विचार तथा स्वरूपस्थिरता में गया था।

जड़ और चैतन्य दोनों, स्वभाव परिणामी द्रव्य, स्वतन्त्र परिणमित होते रहते हैं।

लि.
आत्मस्वरूप की पूर्णता का इच्छुक

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1992
(ई.स. 1936, उम्र-22 वर्ष)

.....।

परम परम उपकारी गुरुदेव को नमस्कार!

.....जो सर्व संयोगों का साक्षी है उसे, ऐसे साधारण प्रसंग किस बिसात में है? फिर भी साक्षीता की पूर्णता नहीं होने से, अपूर्णता होने से, कभी-कभी विभावरूप राग-द्वेष की परिणति में, उपाधि का बोझा लग जाता है।

लि.
— सर्वथा सर्व प्रकार से तीव्रता से निवृत्त
-स्वरूप की इच्छुक
(सर्वथा सर्व प्रकार से तीव्रता से
समाधिस्वरूप की इच्छुक)

☆☆☆

वि.सं. 1993

(ई.स. 1936, उम्र-23 वर्ष)

कार्तिक शुक्ला, मंगलवार, सोनगढ़

.....।

जगदुद्धारक श्री सद्गुरुदेव को नमस्कार!

परम पूज्य गुरुदेव सुखशान्ति में विराजते हैं। गुरुदेव का स्वास्थ्य अच्छा है।

वांचन, विचार एवं स्वरूपस्थिति, अन्तरंग आत्म-वीर्य जाग जाए, उस प्रकार हुआ करता है।

साधकों की दशा जगत से निराली होती है। कभी-कभी स्वरूप में सहजरूप से-निर्विकल्परूप से जम जाती है और कभी बाहर आती है, तब भी भेदज्ञान की, ज्ञाताधारा की, सहज समाधि परिणमती रहती है, स्वरूप में लीनता होती है; तब आत्मा के अचिन्त्य, अनन्त गुणपरिणमन के तरंगों को अनुभव करते हैं। ऐसे होते-होते साधकधारा बढ़ते-बढ़ते मुनिपने की दशा प्रकट होते, मुनिपना आता है और क्रमशः श्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान प्रकटाते हैं। स्व-परप्रकाशक स्वभाववाला ज्ञान पूर्णरूप परिणमता है। आनन्द आदि अनन्त गुण पूर्णरूप से परिणमते हैं। वह दशा धन्य है। बारबार धन्य है।

सुख और आनन्द स्वरूप में है, विभाव सब दुःखरूप और उपाधिरूप है।

दोपहर को गुरुदेव के प्रवचन में, समयसार-नाटक में से, अभी

'बन्ध-अधिकार' पढ़ा जा रहा है, 42 पद तक पढ़ा गया है। यह ही।

लि.

- श्री वीतराग आदि

सत्पुरुषों को नमस्कार

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993,

(ई.स. 1936, उम्र - 23 वर्ष)

कार्तिक, शुक्रवार

.....।

चारों ओर से सूक्ष्म और तीक्ष्ण श्रुतशैली से, दिव्य अमृत-प्रपात बरसानेवाले, अद्‌भुत गुरुदेव के चरणकमल में नमस्कार हो।

परम पूज्य ज्ञाननिधि कृपालु साहेब सुखशान्ति में विराजते हैं। स्वास्थ्य बिल्कुल अच्छा है।

पूज्य गुरुदेव ने समयसार अद्‌भुत और अपूर्व रीति से समझाया है। ऐसा हो जाता है कि, वाह! गुरुदेव वाह! मन-वचन-काया आपकी चरणसेवा में अर्पण करें तो भी कम है। ऐसी आज भावना हो जाती थी। अहा! समयसार में कोई अद्‌भुत रहस्य भरा है। परन्तु ज्ञान, क्रमपूर्वक एवं अधूरा होने से एक साथ पूरा व प्रकट उपयोगात्मकरूप, सभी रहस्य नहीं जान सकता। अत: ऐसी भावना हो जाती है कि, हे प्रभु! कोई ऐसी शक्ति या परिणमन प्रकट हो कि, जिससे सर्वांशरूप ज्ञानस्वरूप स्वयं ही, सहज ज्ञानरूप प्रकट उपयोगात्मकरूप से पूर्णांश परिणमन हो जाये।

द्रव्यदृष्टि से द्रव्य परिपूर्ण है; पर्याय में अल्पता है।

पुरुषार्थ द्वारा चैतन्य का जो वीर्यगुण है, उसके द्वारा साधकपने की श्रेणी बढ़ती है और साध्य पूरा होता है। पर्याय की पूर्ण निर्मलता होती है– वह भेद अपेक्षा की बात है। अभेददृष्टि से, अखण्ड गुण के पिण्डस्वरूप स्वयं ही, परिणमन करके पूरा होता है। भेद–अभेद वस्तुस्वभाव अद्‌भुत है!

पूर्ण सहज स्थिति ही चाहिए।

लि.

गुरुदेव का चरणसेवक

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993

(ई.स. 1937, उम्र–23 वर्ष)

गु. पोष मास, बृहस्पतिवार

.....।

जीवनाधार, अजोड़–रत्न गुरुदेव के चरणकमल में परमभक्तिभावसह बारम्बार नमस्कार।

परम–उपकारी कृपानिधि पूज्य गुरुसाहेब सुखशान्ति में विराजते हैं। गुरुदेव के प्रवचन में 'अनुभवप्रकाश' ग्रन्थ पूरा हो जाने के पश्चात् 'श्रीमद् राजचन्द्र' पढ़ेंगे। गुरुदेव का स्वास्थ्य अच्छा है।

विभावपरिणति के प्रशस्त ओर की प्रवृत्तियोग में वांचन, विचारादि का प्रवर्तन है, अभ्यन्तर में–निवृत्तियोग में–सर्व विभाव से भिन्न ऐसे निवृत्त

स्वरूप में, सहजस्वरूप परिणति का प्रवर्तन है।

बाह्य संयोगों का अस्थिर परिणति में असर, कुछ अंश स्थिति अनुसार होती है; ज्ञायक की प्रतीतिरूप भिन्न ज्ञायकपरिणति में, असर नहीं है, होनेयोग्य नहीं है। स्थिर परिणति में कुछ अंश में स्वरूपसमाधि होनेयोग्य है और वैसा ही है। यह ही—

लि.

आत्मस्वरूप के पूर्णता की इच्छुक

☆☆☆

.....।

'पंचाध्यायी' के विषय में क्या करना, वह विचार चल रहा है। अनुभवप्रकाश के पूरे पुस्तक में 'अनुभव ही' होनेयोग्य है। 'अनुभव' पढ़ते, सुनते, प्रशस्त उल्लास आ जानेयोग्य है एवं आत्मपरिणति को लाभ होनेयोग्य है। वह श्री गुरुदेव का परम प्रताप है। गुरुदेव की वाणी अद्‌भुत, सूक्ष्म और गहन रहस्यों से भरी है। गुरुदेव इस भरतखण्ड में अद्वितीय रत्न प्रकटे हैं—जिनके दिव्य चैतन्य द्वारा और जिनकी दिव्य वाणी द्वारा, इस भरतक्षेत्र में बहुत-बहुत जीवों का उद्धार हुआ है। जिन्होंने अपने तीव्र पुरुषार्थ द्वारा अपूर्व तत्त्व को स्वयं प्रकट करके, हिन्दुस्तान के निद्राधीन जीवों को जागृत किया है, हिन्दुस्तान में, छुपे हुए आत्मतत्त्व को स्वयं प्रकट करके, अगणित जीवों का उद्धार किया है। ऐसे अपने गुरुदेव के चरणकमल में बारम्बार परम भक्ति से नमस्कार, नमस्कार।

आंगन में विराजते ऐसे अपने गुरुदेव की निकटतारूप से, मन-वचन-काया द्वारा चरणसेवा निरन्तर हो, निरन्तर हो। चैतन्यस्वरूप की वृद्धि करानेवाले, जीवन की सफलता करानेवाले, परम उपकारी, प्रिय गुरुदेव की बिल्कुल समीपता हो, अब तो विरह सहन नहीं होता। महाभाग्य से ऐसे गुणसमूह, ज्ञानमूर्ति, शान्तिदाता गुरुदेव मिले हैं। धन्य है, इस क्षेत्र को, धन्य है, इस देश को।

लि.

देव-गुरु-शास्त्र की सेवा इच्छुक

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1994

(ई.स. 1938)

माघ कृष्ण 12, सोमवार

.....।

अजोड़-रत्न गुरुदेव की चरणसेवा, निरन्तर समीपरूप से हो, यह ही भावना है।

परमोपकारी ज्ञानदाता पूज्य गुरुदेव सुखशान्ति में विराजते हैं; स्वास्थ्य अच्छा है।

गुरुदेव के व्याख्यान में 'अनुभवप्रकाश' ग्रन्थ पूरा हो गया है। दो दिन (व्याख्यान में) 'श्रीमद् राजचन्द्र'-वर्ष 25वाँ चल रहा है। बहुत विस्तारपूर्वक और सरस पद्धति से पढ़ा जा रहा है। सुनते-सुनते उदासीनता हो जाती है, अभ्यन्तर स्थिरता हो जाती है। वह श्री गुरुदेव का

परम प्रताप है। गुरुदेव की दिव्य वाणी, ऐसी अद्‌भुत और अपूर्व है कि, (हृदय) उल्लसित हो जाता है, प्रमुदित हो जाता है।

अन्य क्या लिखुं ? लिखने का कुछ विशेष याद नहीं आता। बार-बार पत्र लिखने में बहुत प्रवृत्ति लगती है।

प्रशस्त या अप्रशस्त सभी परिणति उपाधिस्वरूप है। सर्व के साक्षीरूप वेदनपरिणति, वह समाधिरूप है तथा स्वरूपस्थिरता वह समाधिरूप है।

प्रतीतिरूप, ऐसी ज्ञाता की ज्ञातारूप वेदनपरिणति में स्थिरता को बढ़ाते-बढ़ाते साधक, साध्यरूप से पूर्ण हो जाता है, पर्याय की पूर्ण निर्मलता होती है। द्रव्य (सामान्य) तो अनादि-अनन्त परिपूर्ण शुद्धता से भरपूर है। शुद्धात्मा में स्वरूपरमणता बढ़ते-बढ़ते, आत्म-उपयोग परलक्ष्य से सर्वथा छूटकर अपने कृतकृत्य स्वरूप को व्यक्त करता है, स्वरूप में आकर, उसके साथ एकरूप होकर, सर्वांश से जुड़ जाता है।

ऐसे अद्‌भुत स्वरूप को प्राप्त, ऐसे श्री वीतरागदेव को और उस वीतराग स्वरूप को बारम्बार नमस्कार हो।

लि.

श्री गुरुदेव का चरणसेवक

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 1993
(ई.स. 1937)
माघ मास, रविवार

.....।

अद्वितीय कृपालु गुरुदेव की, मन-वचन-काया द्वारा, निरन्तर समीपरूप से चरणसेवा हो, ऐसी भावना है।

परम-उपकारी श्री सद्गुरुदेव सुख-शान्ति में विराजते हैं; स्वास्थ्य अच्छा है।

स्वरूपपरिणति में यथाशक्ति स्वरूपस्थिति हुआ करती है। प्रशस्त योग में वांचन, विचार, यथाशक्ति जिस प्रकार वीर्यपरिणति कार्य करे, वैसे हुआ करती है। ज्ञानपरिणति में कुछ नवीन-नवीन समझ में आता है, परन्तु वह सब पत्र में कैसे लिखा जाये? साधारण लिखना हो तो, लिखा जा सकता है, परन्तु लिखने की ओर लक्ष्य जाता नहीं है।

ज्ञानपर्याय सम्पूर्ण प्रकट होकर, पुरुषार्थ द्वारा अकेला स्व-आश्रयरूप से एवं बिल्कुल सहज परिणमित होगी, तब धन्य होगी।

ज्ञायक की ज्ञातारूप 'अडोल' परिणति, बढ़ते-बढ़ते सर्वांश से सूक्ष्म अडोलता प्राप्त होगी, वह दिन धन्य होगा।

अहा! धन्य है! उस सम्पूर्ण अडोल परिणति को कि जहाँ पर का प्रभाव, सूक्ष्म भी सर्व प्रकार से सहज छूटकर, अकेला साक्षीस्वभाव, वीतरागस्वभाव, अचिन्त्य और अद्भुत ऐसा आत्मद्रव्य, अपने स्वभावों को-तरंगों को अनुभव कर रहा है, उसी में परिणमित कर रहा है, कोई अद्भुतता में खेल रहा है!

पूज्य गुरुदेव के वांचन में अभी भी 'श्रीमद्' ही पढ़ा जा रहा है। गुरुदेव के अपूर्व न्याय अन्य जाति के होते हैं।

आत्म-आधार पूज्य गुरुदेव के स्वास्थ्य में, अब तो जरा भी कुछ न हो, बिलकुल ठीक रहे—ऐसी झंखना (भावना) है।

लि.

श्री आत्मस्वरूप को नमस्कार

☆☆☆

वांकानेर, वि.सं. 1993

(ई.स. 1937, उम्र : 23)

.....!

परमपूज्य, परम उपकारी, स्वरूपदाता कृपालु श्री सद्गुरुदेव को मेरे अत्यन्त-अत्यन्त भक्तिभाव से बारम्बार वन्दन-नमस्कार पहुँचे।

परम कृपालु गुरुराज सुखशान्ति में विराजते होंगे। स्वास्थ्य बिल्कुल अच्छा होगा।

आत्मा और संसार का मेल नहीं है।

सोनगढ़ के प्रति, उस पवित्रभूमि के प्रति बहुत महिमा आती है। अब तो विरह सहन नहीं होता। पूज्य गुरुदेव के प्रति का विरहकाल जल्दी पूरा हो, ऐसी भावना है।

लि.

श्री गुरुदेव का चरणसेवक

☆☆☆

वांकानेर, वि.सं. 1996
(ई.स. 1940)

.....!

परम कृपालु गुरुदेव को अत्यन्त अत्यन्त भक्ति से बार-बार नमस्कार।

हम वहाँ से-कोठारिया से करीब 5 बजे निकले थे। वहाँ से राजकोट आकर, शाम की गाड़ी में, यहाँ वांकानेर सुख-शान्ति से पहुँच गये हैं। परम पूज्य कृपालुदेव के प्रवचन में, करीब हजार-बारह सौ श्रोता थे। बगीचे में-हरी झाड़ी में-प्रवचन दिया था। वृक्ष के नीचे बड़ा चबूतरा था; उस पर पाट (चौकी) थी। वहाँ बैठकर पूज्य गुरुदेव प्रवचन देते थे। चारों तरफ श्रोता बैठे थे। समवसरण जैसा लगता था। श्री पद्मनन्दी में 'श्रुत, परिचित, अनुभूत सर्वने' ऐसे आशय की गाथा आती है, उस पर प्रवचन था। 'हुं कोण छुं?' 'क्यांथी थयो?' '(मैं कौन हूँ? कहाँ से आया?)' आदि आया था।

राजकोट में नानालालभाई के 'आनन्दकुंज' में पूज्य गुरुदेव विराजते थे, तब आनन्दमंगल हो रहे थे। पूज्य गुरुदेव का विहार होने पर 'आनन्दकुंज' का दृश्य सूना लगता था।

परम-उपकारी कृपालु साहेब आज तीसरे गाँव पहुँचे होंगे। विशेष पश्चात्।

-वीतरागदेव को नमस्कार

☆☆☆

सोनगढ़, वि.सं. 2003

(ई.स. 1947, उम्र : वर्ष 33)

.....!

अपूर्व मार्ग प्रकाशक, कृपालु गुरुदेव के चरणकमल में परम भक्तिसह बारम्बार नमस्कार!

द्रव्यजीवन और भावजीवन के आधार, अपूर्व, सर्वस्व उपकारी, परम-कृपालु, अद्‌भुत गुरुदेव सुख-शान्ति में विराजते हैं। शारीरिक प्रकृति अच्छी है।

अब तो विभाव के सभी विकल्पों से छूटकर, वीतराग-पर्यायरूप परिणमन होगा, तब धन्यता होगी! हजारों मुनियों के वृन्द जिस काल में विचरण करते होंगे, वह प्रसंग धन्य है! ऐसे काल में मुनित्व को लेकर घड़ी में (अल्प समय में) अप्रमत्त, घड़ी में (अल्प समय में) प्रमत्त—ऐसी दशा को साधकर, वीतरागी पर्यायरूप परिणमेंगे, तब धन्य होंगे। अभी भी जैसे बने वैसे पुरुषार्थ बढ़ाकर, निर्मल पर्याय को विशेष-विशेष प्रकट करना, वही श्रेयरूप है।

लि.

निरन्तर श्री देव-गुरु-शास्त्र की सेवा

इच्छनेवाली बहिन चम्पा के यथायोग्य...

- श्री वीतरागभाव को नमस्कार

कहानगुरु-महिमा

द्रव्य सकळनी स्वतंत्रता जग मांही गजावनहारा,
वीरकथित स्वात्मानुभूतिनो पंथ प्रकाशनहारा;
– गुरुजी जन्म तमारो रे
जगत ने आनंद करनारो।

✪✪✪

स्वर्णपुरे धर्मायतनो सौ गुरुगुणकीर्तन गातां,
स्थळ-स्थळमां 'भगवान आत्म'ना भणकारा संभळाता;
– कण कण पुरुषारथ प्रेरे,
गुरुजी आतम अजवाळे।
(बहिनश्री चंपाबेन)

कुंवरीने खम्मा खम्मा करती

कुंवरी ने खमा खमा करती, माता ज्ञानामृत पाती,
'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' ना मंगल पाठो भणती,
माता निज कुंवरीने प्रेमे, धर्मामृत नित पाती.... कुंवरीने०
शान्त वदन निर्मल नयनोमां आत्मा ऊज्ज्वल जोती,
धर्मरत्न थाशे मुज कुंवरी, भणकारा अनुभवती.... कुंवरीने०
'अखंड आनंद ध्रुवपद तारुं' हालरडां शुभ गाती,
'सिद्धपणाने साधे कुंवरी', आशि मंगल देती.... कुंवरीने०
ज्योतिषीओ ज्योतिष जोयां, आ कुंडली कोई न्यारी,
विदेहनी विभूति आवी, अद्‌भुत मंगलकारी.... कुंवरीने०
आ कुंवरी छे सीमंधरनां स्मरणो उर धरनारी,
'कहानगुरु तीर्थंकर थाशे'—जिन धुनिमां सुणनारी.... कुंवरीने०
निर्मलहृदयी अल्पभाषिनी, मिष्ट वचन वदनारी,
अलिप्त रहेशे परभावोथी, निजानंद रमनारी.... कुंवरीने०
सीमंधरना नंद पधार्या, शी पुण्यावलि जागी,
झूलो झूलो लाडली मारी, आजे हुं बडभागी.... कुंवरीने०
शान्त शीतल परमाणु जगना, आवी वस्या तुज तनमां,
उपशमरस-अवतार ज्ञानसागर ऊछळे अंतरमां.... कुंवरीने०
चिरं जीवो चिरं जीवो जगदम्बा भवतारी,
स्वानुभूति मतिश्रुत लब्धिथी विश्व ऊजाळनहारी.... कुंवरीने०

– ४ –

अनुभवी की अमृतवाणी

इस विभाग में, आत्मानुभवी पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की अमृतवाणी में से चयनित थोड़े से बोल यहाँ दिये गये हैं।

सुधास्यन्दी–स्वात्मानुभूति परिणत, विशिष्टज्ञानविभूषित, पूज्य बहिनश्री की सहजप्रशमरस झरती मुखमुद्रा ही मानो कि स्वानुभूति और साधकदशा का मूर्तरूप हो, ऐसा सम्यक् मुक्तिपन्थ का मूक उपदेश दे रही है। शास्त्रोपम–गम्भीर, तथापि सरल ऐसे उनके 'वचनामृत' विधविध कोटि के सर्व जीवों को अति उपकारक होते हैं, चमत्कारिक विशदता से वस्तुस्वरूप को हस्तामलकवत् दर्शाते हैं और साधक जीवों की अटपटी अन्तर परिणति की अविरुद्धरूप से स्पष्ट सूझ प्रदान करते हैं।

कृपासागर पूज्य गुरुदेव भी पूज्य बहिनश्री की पवित्र दशा की और वचनामृत की सभा में अनेक बार महिमा वर्णन करते हुए अति प्रसन्नता अनुभव करते थे। सम्यक्परिणत पवित्र महात्माओं के जीवन और वचनामृतों के चिन्तन द्वारा अपने में निजकल्याण साधना का सम्यक् पुरुषार्थ प्रगट हो, यही भावना।

वचनामृत तो बारह अंग का मक्खन है..... पूज्य गुरुदेवश्री

अनुभवी की अमृतवाणी

गुरु कहान तणो उपकार भरते गाजे रे,
स्वानुभूतिभर्यो रणकार, चेतन जागे रे।
गणनातीत गुरु-उपकार मुज अणु-अणु में रे,
शब्दों से कैसे कहाय, नमुं नमुं भावे रे।
देव-गुरु का निवास सदा मुझ हृदय में रे,
शिवपद तक रहूं तुम दास-भावुं उर में रे।

गुरुदेव ने शास्त्रों के गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूप से रखा है। हमें कहीं सत्य ढूँढ़ने को जाना नहीं पड़ा। गुरुदेव का कोई अद्‌भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेव के प्रताप से। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ'—इत्यादि सब गुरुदेव के प्रताप से ही जाना है। भेदज्ञान की बात सुनने को मिलना दुर्लभ थी, उसके बदले उनकी सातिशय वाणी द्वारा उसके हमेशा झरने बह रहे हैं। गुरुदेव मानो हाथ पकड़कर सिखा रहे हैं। स्वयं पुरुषार्थ करके सीख लेने जैसा है। अवसर चूकना योग्य नहीं है।

जो वास्तव में संसार से थक गया है, उसी को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में आ जाने पर वह संसार से इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये' ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य, सो ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है, अन्य सब निकाल देता है।

☆

दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि 'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं'। उसे—द्रव्यदृष्टिवान जीव को—खबर है कि अनन्त काल में अनन्त जीवों ने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनन्त विभूति प्रगट की है। द्रव्यदृष्टि होने पर, द्रव्य में जो-जो हो, वह प्रगट होता ही है; तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है। वह तो प्रारंभ से पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्य पर ही जमी रहती है। किसी भी प्रकार की आशा बिना बिलकुल निस्पृहभाव से ही दृष्टि प्रगट होती है।

☆

बाहर की क्रियायें मार्ग नहीं दिखलाती, ज्ञान मार्ग दिखलाता है। मोक्ष के मार्ग की शुरुआत सच्ची समझ से होती है, क्रिया से नहीं। इसलिए प्रत्यक्ष गुरु का उपदेश और परमागम का प्रयोजनभूत ज्ञान मार्ग प्राप्ति के प्रबल निमित्त हैं। चैतन्य को स्पर्श कर निकलती वाणी मुमुक्षु को हृदय में उतर जाती है। आत्मस्पर्शी वाणी आती हो और एकदम रुचिपूर्वक जीव सुने तो सम्यक्त्व के नजदीक हो जाता है।

☆

जिसे भवभ्रमण से वास्तव में छूटना हो, उसे अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निर्णय करके, अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए। यदि ध्रुव ज्ञायकभूमि का आश्रय न हो तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा? ज्ञायक की ध्रुव भूमि में दृष्टि जमने से, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-करते, निर्मलता प्रगट होती जाती है।

साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है, तथापि साधक जानता है सबको;—वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपने का, उनके सुख-दु:खरूप वेदन का, उनके साधक-बाधकपने का इत्यादि का विवेक वर्तता है। साधकदशा में साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है। पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है और साधक उसे जानता है, तथापि दृष्टि के विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य, वह अधिक का अधिक रहता है।—ऐसी साधक-परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरों को समझना कठिन होता है।

द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी, कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं; द्रव्य की कोटि उच्च ही है, पर्याय की कोटि निम्न ही है। द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक रसकसयुक्त

तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती। 'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभव में आया!' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है।

☆

जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो? इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर उसका आश्रय करना चाहिए। साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही—द्रव्यसामान्य का ही—ध्रुव तत्त्व का ही होता है। ज्ञायक का—'ध्रुव' का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती—ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती; अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

पूज्य गुरुदेव का ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है।

☆

सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे, ऐसी दशा हो, तब मुनिपना आता है। मुनि को

स्वरूप की ओर ढलती हुई शुद्धि इतनी बढ़ गयी होती है कि वे घड़ी-घड़ी आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं। पूर्ण वीतरागता के अभाव के कारण जब बाहर आते हैं, तब विकल्प तो उठते हैं परन्तु वे गृहस्थदशा के योग्य नहीं होते, मात्र स्वाध्याय-ध्यान-व्रत-संयम-तप-भक्ति इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य शुभ विकल्प ही होते हैं और वे भी हठ रहित होते हैं। मुनिराज को बाहर का कुछ नहीं चाहिए। बाह्य में एक शरीरमात्र का सम्बन्ध है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा है। बड़ी नि:स्पृह दशा है। आत्मा की ही लगन लगी है। चैतन्यनगर में ही निवास है। 'मैं और मेरे आत्मा के अनन्त गुण ही मेरे चैतन्यनगर की बस्ती है। उसी का मुझे काम है। दूसरों का मुझे क्या काम ? इस प्रकार एक आत्मा की ही धुन है। विश्व की कथा से उदास हैं। बस, एक आत्मामय ही जीवन हो गया है—मानों चलते-फिरते सिद्ध! जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है; उसी प्रकार जिनभगवान की झलक मुनिराज में दिखती है। मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में रहें, उतना काल कहीं (आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना) वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते, आगे बढ़ते जाते हैं; केवलज्ञान न हो, तब तक शुद्धि बढ़ाते ही जाते हैं।—यह, मुनि की अन्त:साधना है। जगत के जीव मुनि की अन्तरंग साधना नहीं देखते। साधना कहीं बाहर से देखने की वस्तु नहीं है, अन्तर की दशा है। मुनिदशा आश्चर्यकारी है, वन्द्य है।

☆

रुचि की उग्रता में पुरुषार्थ सहज लगता है और रुचि की मन्दता में कठिन लगता है। रुचि मन्द हो जाने पर इधर-उधर लग जाय, तब कठिन

लगता है और रुचि बढ़ने पर सरल लगता है। स्वयं प्रमाद करे तो दुर्गम होता है और स्वयं उग्र पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हो जाता है। सर्वत्र अपना ही कारण है।

सुख का धाम आत्मा है, आश्चर्यकारी निधि आत्मा में है—इस प्रकार बारम्बार आत्मा की महिमा लाकर पुरुषार्थ उठाना और प्रमाद तोड़ना चाहिए।

मुझे कुछ नहीं चाहिए, एक शान्ति चाहिए, कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। विभाव में तो आकुलता ही है। अशुभ से ऊबकर शुभ में; शुभ से थककर अशुभ में—ऐसे अनन्त-अनन्त काल बीत गया। अब तो मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिए।—इस प्रकार अन्तर में गहराई से भावना जागे और वस्तु का स्वरूप कैसा है, उसकी पहिचान करे, प्रतीति करे, तो सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे।

जिसे स्वभाव की महिमा जगी है, ऐसे सच्चे आत्मार्थी को विषय-कषायों की महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है। उसे चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु की महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा ही रहता है।

गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञानतृत्वधारा निरंतर वर्तती रहती है। परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है, इसलिये

उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभपरिणाम होते हैं। स्वरूप में स्थिर नहीं रहा जाता, इसलिये वे विविध शुभभावों में युक्त होते हैं:—'मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो, गुरु के चरणकमल की सेवा हो' इत्यादि प्रकार से जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन-पूजन एवं गुरुसेवा के भाव होते हैं तथा शास्त्र-स्वाध्याय के, ध्यान के, दान के, भूमिकानुसार अणुव्रत एवं तपादि के शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं। इन सब भावों के बीच ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है।

निजस्वरूपधाम में रमनेवाले मुनिराज को भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं:—उनके महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं तथा जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-गुरुभक्ति के उल्लासमय भाव भी आते हैं। 'हे जिनेन्द्र! आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ? अर्थात् आप मिलने से मुझे सब कुछ मिल गया।' ऐसे अनेक प्रकार से श्री पद्मनन्दि आदि मुनिवरों ने जिनेन्द्रभक्ति के स्रोत बहाये हैं।—ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव मुनिराज को भी हठ बिना आते हैं। साथ ही साथ ज्ञायक के उग्र आलम्बन से मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत् चलती ही रहती है।

साधक को—मुनि को तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को—जो शुभभाव आते हैं, वे ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण उनका आकुलतारूप से—दु:खरूप से वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते।

साधक की दशा एकसाथ त्रिपुटी (-तीन विशेषताओंवाली)

है:— एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है, उसका—दु:खरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है।

साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं। यों तो साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं, अज्ञानी की भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभव में दु:ख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। शुभभावों के साथ-साथ वर्तती, ज्ञायक का अलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति, वही साधक को सुखरूप ज्ञात होती है।

जिस प्रकार हाथी के बाहर के दाँत—दिखाने के दाँत अलग होते हैं और भीतर के दाँत—चबाने के दाँत अलग होते हैं, उसी प्रकार साधक को बाह्य में उत्साह के कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें, वे अलग होते हैं और अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणमन अलग होता है। बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता।

पूज्य गुरुदेव की वाणी मिले, यह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतलानेवाले गुरु मिले और वाणी सुनने को मिली, वह मुमुक्षुओं का परम सौभाग्य है। प्रतिदिन सवेरे-दोपहर, दो समय ऐसा उत्तम सम्यक्तत्त्व सुनने को मिलता है, इसके जैसा दूसरा कौन सा सद्भाग्य होगा? श्रोता को अपूर्वता लगे और पुरुषार्थ करे तो वह आत्मा के समीप आ जाये और

जन्म-मरण टल जाये—ऐसी अद्‌भुत वाणी है। ऐसा श्रवण का जो सौभाग्य मिला है, उसे मुमुक्षु जीवों को सफल करने योग्य है। पंचम काल में निरन्तर अमृत झरती गुरुदेव की वाणी भगवान का विरह भुलाती है।

चैतन्य मेरा देव है, उसे ही मैं देखता हूँ, दूसरा कोई मुझे दिखता ही नहीं न!—ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्य की ही अधिकता रहे, तो सब निर्मल होता जाता है। स्वयं अपने में गया, एकत्वबुद्धि टूट गयी, इसलिए सब रस शिथिल पड़ गये। स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनन्त शिथिलता आयी। न्यारा, सबसे न्यारा होकर संसार का रस अनन्त घट गया। दिशा पूरी बदल गयी।

मैंने मेरे परमभाव को ग्रहण किया, उस परमभाव के समक्ष तीन लोक का वैभव तुच्छ है। दूसरा तो क्या, परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय—निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह भी, मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ कि, मेरी नहीं। मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है, अमाप है। निर्मल पर्याय का वेदन भले हो परन्तु द्रव्यस्वभाव के समक्ष उसकी विशेषता नहीं।—ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट हो? कि चैतन्य की महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव स्वसन्मुख ढले तब।

कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी, अपने पास ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी, बाहर भीख माँगता हो; वैसे तू स्वयं तीन लोक का नाथ होने पर भी, तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी, 'पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना, मुझे सुख देना' इस प्रकार भीख माँगता रहता

है! 'मुझे धन में से सुख मिल जाये, मुझे शरीर में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये' इस प्रकार तू भीख माँगता रहता है! परन्तु बाहर से कुछ नहीं मिलता। गहराई से ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये तो अन्तर में से ही सब कुछ मिलता है। जैसे भोंयरे में जाकर योग्य चाबी द्वारा तिजोरी का ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों और दारिद्र दूर हो जाये; उसी प्रकार गहराई में जाकर ज्ञायक के अभ्यासरूप चाबी से भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये तो अनन्त गुणरूप निधान प्राप्त हों और भिक्षुकवृत्ति मिट जाये।

☆

मुनिराज कहते हैं:—हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है। उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये, ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता। हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए। उस पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है। चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन! ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं। (ऐसी भावना के समय भी मुनिराज की दृष्टि तो सदाशुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।)

☆

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धार रखता है, टिकाये रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चालू ही

होती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के प्रमाण में उपयोग अन्तर में जाता है, तथा बाहर आता है; मुनिराज को तो उपयोग बहुत शीघ्रता से बारम्बार अन्दर उतर जाता है। भेदज्ञान की परिणति—ज्ञाताधारा—दोनों को चालू ही होती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से पुरुषार्थ के बिना कोई काल नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान प्रमाण और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान अनुसार पुरुषार्थ वर्ता ही करता है। पुरुषार्थ बिना कहीं परिणति टिकती नहीं। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है।

पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से स्वयं ने जिस तत्त्व को पकड़ा हो, उसका मन्थन करना चाहिए। निवृत्ति काल में अपनी परिणति में रस आवे, ऐसी पुस्तकों का वांचन करके अपनी लगन को जागृत रखना चाहिए। आत्मा के ध्येयपूर्वक, अपनी परिणति में रस आवे, ऐसे विचार-मन्थन करने से अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है।

☆

रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिन्तन, मन्थन, खटका बना रहता है। जिस प्रकार किसी को 'माँ' का प्रेम हो तो उसे माँ की याद, उसका खटका निरन्तर बना ही रहता है; उसी प्रकार जिसे आत्मा का प्रेम हो, वह भले ही शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हो, तथापि अन्तर में खटका तो आत्मा का ही रहता है। 'माँ' के प्रेमवाला भले ही कुटुम्ब-परिवार के समूह में बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ' में ही लगा रहता है — 'अरे! मेरी माँ... मेरी माँ!'; उसी प्रकार आत्मा का खटका रहना चाहिए। चाहे जिस प्रसङ्ग में 'मेरा आत्मा... मेरा आत्मा!'

यही खटका और रुचि रहना चाहिए। ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती।

☆

मुझे कुछ नहीं चाहिए, किसी परपदार्थ की लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिए—ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो, उसे मार्ग मिलता ही है। अन्तर में चैतन्यऋद्धि है, तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता। ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए।—ऐसी अन्तर में जाने की तीव्र उत्सुकता जागे तो आत्मा प्रगट हो, प्राप्त हो।

☆

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है, वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं-न्यारे हैं।

☆

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है।

☆

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को

नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।

'मैं अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ', यह विकल्प भी दु:खरूप लगते हैं, शान्ति नहीं मिलती; विकल्पमात्र में दु:ख ही दु:ख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभाव में लीन होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है।

मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए। उसे सुख का वेदन चाहिए है, वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है; इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता।

सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी कार्यों में स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है, वह अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।

'जिसे लगी है, उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है — ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती; इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।

☆

मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है। उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है। आत्मा के आश्रय से निर्भयता बहुत प्रगट हुई है। घोर जंगल हो, एकदम हरियाली हो, सिंह-बाघ दहाड़ मारते हों, मेघ की रात जमी हो, चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्तरूप से बसते हैं। आत्मा में से बाहर आवे तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त जुड़ता है और वापस अन्तर में चले जाते हैं। स्वरूप के झूले में झूलते हैं। मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है। अद्‌भुत दशा है!

☆

द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासित होता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता। भेदज्ञान

की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से पृथक् भासित होता है। दिन में जागते हुए तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रात्रि में नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।

उसे भूमिका प्रमाण बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई अलग ही रहती है। मैं तो ज्ञायक, वह ज्ञायक ही हूँ, नि:शंक ज्ञायक हूँ। विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए; ज्ञायक पृथक् ही है, पूरा ब्रह्माण्ड बदले तो भी पृथक् ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है। स्वरूप-अनुभव में अत्यन्त नि:शंकता वर्तती है। ज्ञायक ऊँचे चढ़कर-ऊर्ध्वरूप से विराजता है; दूसरा सब नीचे रह गया होता है।

जीव भले चाहे जितने शास्त्र पढ़े, वाद-विवाद कर जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फिरावे, परन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्मा को पकड़े नहीं और तद्रूप परिणमे नहीं, तो वह ज्ञेयनिमग्न रहता है, जो-जो बाहर का जाने उसमें तल्लीन हो जाता है। मानो कि ज्ञान बाहर से आता हो, ऐसा भास वेदन किया करता है। सब पढ़ गया, बहुत युक्ति-न्याय जाने, बहुत विचार किये, परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना, ज्ञान की मूल भूमि नजर में नहीं आयी, तो वह सब जानने का क्या फल ? शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है।

अन्तर में तू तेरे आत्मा के साथ प्रयोजन रख और बाहर में देव-शास्त्र-गुरु के साथ; बस, अन्य के साथ तुझे क्या प्रयोजन है ?

जो व्यवहार से साधनरूप कहलाते हैं, जिनका आलम्बन साधक को आये बिना नहीं रहता—ऐसे देव-शास्त्र-गुरु के आलम्बनरूप शुभभाव, वह भी परमार्थ से हेय है, तो फिर अन्य पदार्थों या अशुभभावों की तो बात ही क्या ? उनसे तुझे क्या प्रयोजन है ?

आत्मा की मुख्यतापूर्वक देव-शास्त्र-गुरु का आलम्बन साधक को आता है। मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी कहा है कि 'हे जिनेन्द्र ! मैं चाहे जिस स्थान में होऊँ परन्तु बारम्बार आपके पादपंकज की भक्ति हो !'—ऐसे भाव साधकदशा में आते हैं, और साथ-साथ आत्मा की मुख्यता तो सतत् रहा ही करती है।

अभी पूज्य गुरुदेवश्री की बात को ग्रहण करने के लिये बहुत जीव तैयार हो गये हैं। गुरुदेव को वाणी का योग प्रबल है, श्रुत की धारा ऐसी है कि लोगों को असर करती है और 'सुनते ही रहें' ऐसा लगता है। गुरुदेव ने मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया और स्पष्ट किया है। उन्हें श्रुत की लब्धि है।

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है, तथापि उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप वेदन में आती है और वीतरागता अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है। जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है। जैसे आँख में कण

नहीं समाता; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता। यदि साधक को बाहर में—प्रशस्त-अप्रशस्त राग में—दु:ख न लगे और अन्दर में—वीतरागता में सुख न लगे तो वह अन्दर कैसे जाये? कहीं राग के सम्बन्ध में 'राग आग दहे' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्त राग को 'विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि विभाव का अंश, वह दु:खरूप है। भले उत्कृष्ट में उत्कृष्ट शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो, तथापि जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है और जितना निवृत्त होकर स्वरूप में लीन हुआ, उतनी शान्ति और स्वरूपानन्द है।

इस चैतन्य तत्त्व को पहिचानना, चैतन्य को पहिचानने का अभ्यास करना, भेदज्ञान का अभ्यास करना—यही करनेयोग्य है। यह अभ्यास करते-करते आत्मा की रागादि से भिन्नता भासित हो तो आत्मा का स्वरूप प्राप्त होता है। आत्मा चैतन्यतत्त्व है, ज्ञायकस्वरूप है—उसे पहिचानना। जीव को ऐसा भ्रम है कि मैं परद्रव्य का कर सकता हूँ, परन्तु स्वयं परपदार्थ में कुछ नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। स्वयं जाननेवाला है, ज्ञायक है। परपदार्थ में इसका ज्ञान नहीं जाता, पर में से कुछ आता नहीं। यह समझने के लिये देव-शास्त्र-गुरु आदि बाह्य निमित्त होते हैं, परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र सब जो प्रगट होता है, वह अपने में से ही प्रगट होता है। इस मूल तत्त्व को पहिचानना, यही करनेयोग्य है। दूसरा बाहर का तो अनन्त काल में बहुत किया है। शुभभाव की सब क्रियायें की, शुभभाव में धर्म माना, परन्तु धर्म तो आत्मा के शुद्धभाव में ही है। शुभ तो विभाव है,

आकुलतारूप है, दु:खरूप है, उसमें कहीं शान्ति नहीं है। यद्यपि शुभभाव आये बिना नहीं रहते, तथापि वहाँ शान्ति तो है ही नहीं। शान्ति हो, सुख हो–आनन्द हो, ऐसा तत्त्व तो चैतन्य ही है। इसलिए चैतन्यतत्त्व को पहिचानकर उसमें स्थिर होने का प्रयास करना, यही वास्तविक श्रेयरूप है। यह एक ही मनुष्य जीवन में करनेयोग्य–हितरूप–कल्याणरूप है।

जगत में सर्वोत्कृष्ट चीज़ तेरा आत्मा ही है। उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरा हुआ है। वह गुणमणियों का भण्डार है। ऐसे दिव्यस्वरूप आत्मा की दिव्यता को तू पहिचानता नहीं, और परवस्तु को मूल्यवान मानकर उसे प्राप्त करने के लिये मेहनत कर रहा है! परवस्तु तीन काल में कभी किसी की हुई नहीं, तू व्यर्थ भ्रमणा से उसे अपनी करने के लिये मिथ्या प्रयास कर रहा है और तेरा बुरा कर रहा है!

अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को कहा जाता है, वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक; शास्त्र में निश्चयनय के विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है, वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।

प्रमाण–अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है, अपरिणामी तथा परिणामी है। परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते। परिणाम कहाँ चले जायँ? परिणमन तो पर्यायस्वभाव के कारण होता ही रहता है, सिद्ध में भी परिणति तो होती है।

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायक पर—दृष्टि ही सम्यक् दृष्टि है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञान की पर्याय' 'यह मेरी द्रव्य की पर्याय' इस प्रकार पर्याय में किसलिये रुकता है? निष्क्रिय तत्त्व पर—तल पर—दृष्टि स्थापित कर न!

परिणाम तो होते ही रहेंगे। परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिये देता है? पर्याय में—पलटते अंश में—द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है? उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य का अवलम्बन कर न!

ज्ञानानन्दसागर की तरंगों को न देखकर उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर। तरंगें तो उछलती ही रहेंगी; तू उनका अवलम्बन किसलिये लेता है?

अनंत गुणों के भेद पर से भी दृष्टि हटा ले। अनंत गुणमय एक नित्य निजतत्त्व—अपरिणामी अभेद एक दल—उसमें दृष्टि दे। पूर्ण नित्य अभेद का जोर ला; तू ज्ञाता-दृष्टा हो जायगा।

☆

जो बहुत थका हुआ है, द्रव्य के अतिरिक्त जिसे कुछ चाहिए ही नहीं, जिसे आशा-पिपासा छूट गयी है, द्रव्य में जो हो, वही जिसे चाहिए है, वह सच्चा जिज्ञासु है।

द्रव्य जो कि शान्तिवाला है, वही मुझे चाहिए - ऐसी निःस्पृहता आये तो द्रव्य में गहरे जाये और सब पर्यायें प्रगट हो।

☆

जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है और 'स्वयं

ज्ञान तथा क्रिया दोनों करता है' ऐसी भ्रमणा का सेवन करता है। बाह्य ज्ञान को, भंगभेद के पहलुओं को, धारणा ज्ञान को वे ज्ञान मानते हैं और परद्रव्य के ग्रहण-त्याग को, शरीर की क्रिया को, अथवा बहुत तो शुभभाव को, वे 'क्रिया' मानते हैं। 'मुझे इतना आता है, मैं इतनी कठोर क्रियायें करता हूँ' इस प्रकार वे मिथ्या अभिमान में रहते हैं।

ज्ञायक की स्वानुभूति बिना 'ज्ञान' होता नहीं और ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन से आत्मद्रव्य स्वभावरूप परिणमकर जो स्वभावभूत क्रिया होती है, उसके अतिरिक्त 'क्रिया' है नहीं। पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है? जड़ के कार्य में तो जड़ परिणमता है, आत्मा से जड़ के कार्य कभी नहीं होते। 'शरीरादि के कार्य मेरे नहीं और विभावकार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं, मैं तो ज्ञायक हूँ'—ऐसी साधक की परिणति होती है। सच्चे मोक्षार्थी को भी अपने जीवन में ऐसा घुंट जाना चाहिए। भले प्रथम सविकल्परूप हो, परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए। पश्चात् शीघ्र अन्तर का पुरुषार्थ करे तो शीघ्र निर्विकल्प दर्शन हो, देरी से करे तो देरी हो। निर्विकल्प स्वानुभूति करके, स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते, जीव मोक्ष को प्राप्त करता है—इस विधि के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्त करने की अन्य कोई विधि नहीं है।

प्रश्न—हम अनन्त काल के दुखियारे; हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?

उत्तर—'मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' इस मार्ग पर जाने से दुःख दूर होगा और सुख की घड़ी आयेगी। ज्ञायक की

प्रतीति हो और विभाव की रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्न के पीछे विकल्प टूटेगा और सुख की घड़ी आयेगी। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर, फिर गहराई से कर, परन्तु चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा। शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना, वही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। आत्मा सुख का धाम है, उसमें से सुख प्राप्त होगा।

☆

प्रश्न—निर्विकल्पदशा होने पर वेदन किसका होता है ? द्रव्य का या पर्याय का ?

उत्तर—दृष्टि तो ध्रुवस्वभाव की ही होती है; वेदन होता है आनन्दादि पर्यायों का।

द्रव्य तो स्वभाव से अनादि-अनन्त है, जो पलटता नहीं है, बदलता नहीं है। उस पर दृष्टि करने से, उसका ध्यान करने से, अपनी विभूति का प्रगट अनुभव होता है।

☆

पूज्य गुरुदेव ने तो सारे भारत के जीवों को जागृत किया है। सैकड़ों वर्षों में जो छनावट नहीं हुई, इतनी अधिक मोक्षमार्ग की छनावट की है। छोटे-छोटे बालक भी समझ सकें, ऐसी भाषा में मोक्षमार्ग को खुल्ला किया है। अद्‌भुत प्रताप है। अभी तो लाभ लेने का काल है।

☆

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है। ज्ञानी निजस्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने के लिये तरसते हैं। 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं। इस परदेश में हम कहाँ आ पड़े ? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। हम अब उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें शीघ्रता से हमारे मूल वतन में जाकर निश्चिन्त बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।'

☆

प्रश्न—सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक शुद्ध परिणमन वेदन में आता है ?

उत्तर—निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में आनन्दगुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।

आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं, इसलिए एक गुण की पर्याय का वेदन हो, उसके साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें अवश्य वेदन में आती हैं। भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों और सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।

स्वानुभूति के काल में अनन्त गुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि

गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता हुआ प्रगट होता है। वह निर्विकल्पदशा अद्‌भुत है, वचनातीत है। वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है।

☆

तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं। अनन्त गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं, असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं। तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्या लेने जाता है ? तुझमें है, उसे देख न ! तुझमें क्या कमी है ? तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब है। सुख और ज्ञान तो क्या, परन्तु कोई भी चीज़ बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। एक बार तू अन्दर में प्रवेश कर, सब अन्दर है। अन्दर गहरे प्रवेश करने से, सम्यग्दर्शन होने पर, तुझे तेरे निधान दिखाई देंगे और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदन कर तू तृप्त होगा। फिर पुरुषार्थ चालू ही रखना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा।

☆

स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं। उसके लिये निरन्तर उन्हें परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है, दिन-रात रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। शरीर है परन्तु शरीर की कुछ पड़ी नहीं, देहातीत जैसी दशा है। उत्सर्ग और अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं। आत्मा का पोषण करके निज स्वभावभावों को पुष्ट करते हुए विभावभावों का शोषण करते हैं। जैसे माता का पल्लू पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ कठिनाई दिखने पर विशेष जोर से

पल्लू पकड़ लेता है, उसी प्रकार मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्य को पकड़ते हैं। 'ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे!' ऐसा मनोरथा सम्यग्दृष्टि को वर्तता है।

☆

गुरुदेव मार्ग बहुत ही स्पष्ट बतला रहे हैं। आचार्य-भगवन्तों ने मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है और गुरुदेव उसे स्पष्ट कर रहे हैं। पेंथीये-पेंथीये तेल डाले, वैसी सूक्ष्मता से स्पष्ट करके सब समझाते हैं। भेदज्ञान का मार्ग हथेली में दिखाते हैं। माल चोळी ने, तैयार करके देते हैं कि 'ले, खा ले'। अब खाना तो स्वयं को है।

☆

प्रश्न—विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते!

उत्तर—विकल्प तुझे लगे नहीं हैं, तू विकल्पों को लगा है। तू हट जा न! विकल्पों में रंचमात्र सुख और शान्ति नहीं हैं, अन्तर में पूर्ण सुख एवं समाधान है।

पहले आत्मस्वरूप की प्रतीति होती है, भेदज्ञान होता है, पश्चात् विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है।

☆

जैसे पाताल कुँआ खोदने पर, पत्थर की अन्तिम परत टूटकर उसमें छेद पड़ने से, उसमें से पानी की जो ऊँची शेड उड़ती है, उस शेड को देखने से पाताल के पानी का अन्दर का पुष्कल जोर ख्याल में आता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराई में चैतन्यतत्त्व के तल तक पहुँच जाने से, सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर, जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है, उस

पर्याय को वेदने से चैतन्यतत्त्व का अन्दर का अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में-स्पष्ट ख्याल में आता है।

☆

प्रश्न—आत्मद्रव्य का बहुभाग शुद्ध रहकर मात्र थोड़े भाग में ही अशुद्धता आयी है न ?

उत्तर—निश्चय से अशुद्धता द्रव्य के थोड़े भाग में भी नहीं आयी है, वह तो ऊपर-ऊपर ही तैरती है। वास्तव में यदि द्रव्य के थोड़े भी भाग में अशुद्धता आये अर्थात् द्रव्य का थोड़ा भी भाग अशुद्ध हो जाये, तो अशुद्धता कभी निकलेगी ही नहीं, सदाकाल रहेगी! बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव द्रव्य के ऊपर तैरते हैं परन्तु उसमें सचमुच स्थान नहीं पाते। शक्ति तो शुद्ध ही है, व्यक्ति में अशुद्धता आयी है।

☆

प्रश्न—मुमुक्षु को शास्त्र का अभ्यास विशेष रखना या चिन्तन में विशेष समय लगाना ?

उत्तर—सामान्य अपेक्षा से तो, शास्त्राभ्यास चिन्तनसहित होता है, चिन्तन शास्त्राभ्यासपूर्वक होता है। विशेष अपेक्षा से, अपनी परिणति जिसमें टिकती हो और अपने को जिससे विशेष लाभ होता दिखायी दे, वह करना चाहिए। यदि शास्त्राभ्यास करने से अपने को निर्णय दृढ़ होता हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास विशेष करना चाहिए और यदि चिन्तन से निर्णय में दृढ़ता होती हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत चिन्तन विशेष करना चाहिये। अपनी परिणति को

लाभ हो, वह करना चाहिये। अपनी चैतन्यपरिणति आत्मा को पहिचाने, यही ध्येय होना चाहिए। उस ध्येय की सिद्धि के हेतु प्रत्येक मुमुक्षु को ऐसा ही करना चाहिए, ऐसा नियम नहीं हो सकता।

☆

प्रश्न—मुमुक्षु जीव पहले क्या करे ?

उत्तर—पहले द्रव्य-गुण-पर्याय—सबको पहिचाने। चैतन्यद्रव्य के सामान्यस्वभाव को पहिचानकर, उस पर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते-करते चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये, तो उसमें जो विभूति है, वह प्रगट होती है। चैतन्य के असली स्वभाव की लगन लगे, तो प्रतीति हो; उसमें स्थिर हो तो उसका अनुभव होता है।

सबसे पहले चैतन्यद्रव्य को पहिचानना, चैतन्य में ही विश्वास करना और पश्चात् चैतन्य में ही स्थिर होना... तो चैतन्य प्रगट हो, उसकी शक्ति प्रगट हो।

प्रगट करने में अपनी तैयारी होना चाहिए; अर्थात् उग्र पुरुषार्थ बारम्बार करे, ज्ञायक का ही अभ्यास, ज्ञायक का ही मन्थन, उसी का चिन्तवन करे, तो प्रगट हो।

पूज्य गुरुदेव ने मार्ग बतलाया है; चारों ओर से स्पष्ट किया है।

☆

भवभ्रमण चलता रहे, ऐसे भाव में यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है। भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है। भवभ्रमण कितने दु:खों से भरा है, उसका गम्भीरता से विचार तो कर! नरक के भयंकर दु:खों में एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है, वहाँ सागरोपम

काल की आयु कैसे कटी होगी ? नरक के दु:ख सुने जायें ऐसे नहीं हैं। पैर में काँटा लगने जितना दु:ख भी तुझसे सहा नहीं जाता, तो फिर जिसके गर्भ में उससे अनन्तानन्तगुने दु:ख पड़े हैं, ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता ? गफलत में क्यों रहता है ? ऐसा उत्तम योग पुन: कब मिलेगा ? तू मिथ्यात्व छोड़ने के लिये जी-जान से प्रयत्न कर, अर्थात् साता-असाता से भिन्न तथा आकुलतामय शुभाशुभभावों से भी भिन्न ऐसे निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का प्रबल पुरुषार्थ कर। यही इस भव में करनेयोग्य है।

☆

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है।

☆

ऊपर-ऊपर से वांचन-विचार आदि से कुछ नहीं होता, अन्दर आंतडी में से भावना उठे तो मार्ग सरल होता है। ज्ञायक की अर्न्तस्थल में बहुत महिमा आना चाहिए।

☆

पहली भूमिका में शास्त्र वाँचन-श्रवण-मनन आदि सब होता है,

परन्तु अन्दर उस शुभराग से सन्तुष्ट नहीं हो जाना। उस कार्य के साथ भी ऐसी खटक रहना चाहिए कि यह सब है, परन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभभाव से रहित मार्ग अन्दर है—यह खटक साथ ही रहना चाहिए।

☆

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे, ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।

☆

रुचि का पोषण और तत्त्व का घोटन चैतन्य के साथ बुन जाये तो कार्य होता ही है। अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है, उसे छोड़। जिसे आत्मा पोसाता है, उसे दूसरा पोसाता नहीं और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य रहता नहीं। जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये? अवश्य प्राप्त हो ही।

☆

ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति! जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। जैसे शक्कर में सर्वांग मिठास, उसी प्रकार आत्मा में सर्वांग आनन्द।

☆

जिसने शान्ति का स्वाद चखा है, उसे राग पोषाता नहीं है, वह परिणति में विभाव से दूर भागता है। जैसे एक ओर बर्फ का ढ़ेर हो तथा

दूसरी ओर अग्नि हो, उसके बीच खड़ा हुआ व्यक्ति अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है, उसी प्रकार जिसने थोड़े भी सुख का स्वाद चखा है, जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है, ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है और शीतलता की ओर ढलता है।

☆

जैसे सोने को जंग नहीं लगता, अग्नि को दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, हीनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी।

☆

किसी भी प्रसंग में एकाकार नहीं हो जाना। मोक्ष के अतिरिक्त तुझे क्या प्रयोजन है ? प्रथम भूमिका में भी 'मात्र मोक्ष अभिलाष' होता है।

☆

जो मोक्ष का अर्थी हो, संसार से जिसे थकान लगी हो, उसके लिये गुरुदेव की वाणी का प्रपात बह रहा है, जिसमें से मार्ग सूझता है। वास्तविक तो, अन्दर से थकान लगे तो ज्ञानी द्वारा कुछ दिशा सूझने के पश्चात् अन्दर में और अन्दर में प्रयत्न करने से आत्मा प्राप्त हो जाता है।

☆

'द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ'—ऐसा मानते होने पर भी 'पर्याय से तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं।

गणधरदेव भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र ! मैं आपके ज्ञान को पहुँच नहीं सकता। आपके एक समय के ज्ञान में समस्त लोकालोक और अपनी

भी अनन्त पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनन्त-अनन्त द्रव्य-पर्यायों को जानता हुआ अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णरूप से परिणमित हो गये हो। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूरी पर्यायरूप आप सम्पूर्णरूप से परिणमित हो गये हो। आपकी क्या महिमा हो? आपको तो जैसा द्रव्य वैसी ही एक समय की पर्याय परिणम गयी है; मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है।'

इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी, पर्याय-अपेक्षा से ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्याय की अपेक्षा से अपनी पामरता जानता है।

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभाव में स्थित है। मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परमपारिणामिक भाव की धुन लगायी है। यह पंचम भाव पवित्र है, महिमावन्त है। उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।

जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो, अध्रुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिये औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायिकभाव अवलम्बन के योग्य नहीं हैं।

जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिक -भाव का ही— पारमार्थिक असली वस्तु का ही—आश्रय करने योग्य है, उसी की शरण लेने योग्य है। उसी से सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।

आत्मा में सहजभाव से विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं, तथापि वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर साधक को निर्मलता परिणमित नहीं होती।

इसलिए परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुण-स्वरूप अभेद एक चेतनद्रव्य का ही-अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही-आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसी की शरण लेना, उसी का ध्यान करना, कि जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।

इसलिए द्रव्यदृष्टि करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर उसका अवलम्बन करो। वही, वस्तु के अखण्ड एक परम -पारिणामिकभाव का आश्रय है। आत्मा अनन्त गुणमय है परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तु को अभेदरूप से ग्रहण करती है।

यह पंचम भाव पावन है, पूजनीय है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, शान्ति और सुख परिणमित होता है, वीतरागता होती है, पंचम गति की प्राप्ति होती है।

द्रव्य उसे कहा जाता है कि जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखनी पड़े।

जिस प्रकार वटवृक्ष की जटा पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में पड़कर, विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके विमान में नहीं बैठा, उसी प्रकार अज्ञानी जीव विषयों के कल्पित सुख की तीव्र लालसा में पड़कर गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके शुद्धात्मरुचि नहीं करता, अथवा 'इतना काम कर लूँ, इतना काम कर लूँ' इस प्रकार प्रवृत्ति के रस में लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय नहीं पाता, इतने में तो मृत्यु का समय आ पहुँचता है। फिर 'मैंने कुछ किया नहीं, अरेरे! मनुष्यभव व्यर्थ गया' इस प्रकार वह पछताये, तथापि किस काम का? मृत्यु के समय उसे किसकी शरण है? वह रोग की, वेदना की, मृत्यु की, एकत्वबुद्धि की और आर्तध्यान की चपेट में आकर देह छोड़ता है। मनुष्यभव हारकर चला जाता है।

धर्मी जीव रोग की, वेदना की या मृत्यु की चपेट में नहीं आता, क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है। विपत्ति के समय वह आत्मा में से शान्ति प्राप्त कर लेता है। विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है। मरणादि के समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज सुख सरोवर में विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है—जहाँ रोग नहीं है, वेदना नहीं है, मरण नहीं है; शान्ति की अखूट निधि है। वह शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है, उसका जीवन सफल है।

तू मरण का समय आने से पहले चेत जा, सावधान हो, सदा

शरणभूत—विपत्ति के समय विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे शुद्धात्मद्रव्य को अनुभवने का उद्यम कर।

अज्ञानी ने अनादि काल से अनन्त ज्ञान-आनन्दादि समृद्धि से भरपूर निज चैतन्य महल को ताला लगा दिया है और स्वयं बाहर भटका करता है। ज्ञान बाहर से शोधता है, आनन्द बाहर से शोधता है, सब बाहर से शोधता है। स्वयं भगवान होने पर भी भिक्षा माँगा करता है।

ज्ञानी ने चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं। अन्दर में ज्ञान-आनन्द आदि की अखूट समृद्धि देखकर और थोड़ी भोगकर, उसे पूर्व में कभी नहीं अनुभवी, ऐसी निश्चिन्तता हो गयी है।

मोक्षमार्ग का स्वरूप संक्षेप में कहें तो 'अन्दर में ज्ञायक आत्मा को साध।' यह संक्षिप्त में सब कहा गया है। विस्तार किया जाये तो अनन्त रहस्य निकलें, क्योंकि वस्तु में अनन्त भाव भरे हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव तैंतीस-तैंतीस सागरोपम जितने काल तक धर्मचर्चा, जिनेन्द्रस्तुति इत्यादि करते हैं। इन सबका संक्षेप 'शुभाशुभभावों से न्यारे एक ज्ञायक का आश्रय करना, ज्ञायकरूप परिणति प्रगट करना' यह है।

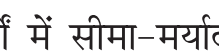

बाहर में सब कार्यों में सीमा-मर्यादा होती है। अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान और आनन्द है। वहाँ सीमा-मर्यादा नहीं। अन्दर में-स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति है, उसकी यदि

मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी विमुख ही न हो, बाह्य में ही सदा रुक जाये। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध शक्ति से भरपूर है।

विचार, मन्थन सब विकल्परूप ही है। उससे भिन्न विकल्पातीत एक टिकता ज्ञायकतत्त्व, वह आत्मा है। उसमें 'यह विकल्प तोड़ूँ, यह विकल्प तोड़ूँ' यह भी विकल्प ही है। उससे उस पार पृथक् ही चैतन्यपदार्थ है। उसका अस्तित्व ख्याल में आवे, 'मैं भिन्न, मैं यह ज्ञायक भिन्न' ऐसा निरन्तर घोंटन रहे, वह भी अच्छा है। पुरुषार्थ की उग्रता और उस प्रकार का उघाड़ हो तो मार्ग निकलता ही है। पहले विकल्प टूटता नहीं परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है।

मलिनता टिकती नहीं और मलिनता रुचती नहीं; इसलिए मलिनता वस्तु का स्वभाव हो ही नहीं सकता।

हे आत्मा! यदि तुझे विभाव से छूटकर मुक्तदशा प्राप्त करनी हो तो चैतन्य के अभेद स्वरूप को ग्रहण कर। द्रव्यदृष्टि सर्व प्रकार की पर्याय को दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्य स्वरूप को ग्रहण करती है; द्रव्यदृष्टि के विषय में गुणभेद भी नहीं होते। ऐसी शुद्ध दृष्टि प्रगट कर।

ऐसी दृष्टि के साथ वर्तता ज्ञान वस्तु में रहे हुए गुणों तथा पर्यायों को, अभेद तथा भेद को, विविध प्रकार से जानता है। लक्षण, प्रयोजन इत्यादि अपेक्षा से गुणों में भिन्नता है, और वस्तु अपेक्षा से अभेद है, ऐसा

ज्ञान जानता है। 'इस आत्मा की यह पर्याय प्रगट हुई, यह सम्यग्दर्शन हुआ, यह मुनिदशा हुई, यह केवलज्ञान हुआ'—ऐसी सभी महिमावन्त पर्यायों को तथा अन्य सर्व पर्यायों को ज्ञान जानता है। ऐसा होने पर भी शुद्धदृष्टि (सामान्य के अतिरिक्त) किसी प्रकार में रुकती नहीं।

साधक आत्मा को भूमिका प्रमाण देव-गुरु की महिमा के, श्रुत चिन्तवन के, अणुव्रत-महाव्रत के इत्यादि विकल्प होते हैं, परन्तु वे ज्ञायकपरिणति को बोझरूप है, क्योंकि स्वभाव से विरुद्ध है। अधूरी दशा में वे विकल्प होते हैं; स्वरूप में एकाग्र होने पर निर्विकल्प स्वरूप का वास होने पर वे सब छूट जाते हैं। पूर्ण वीतरागदशा होने पर सर्व प्रकार के राग का क्षय होता है।

— ऐसी साधकदशा प्रगट करनेयोग्य है।

☆

जैसे पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है, उसी प्रकार मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;-वैराग्य का ज्वार आता है, आनन्द का ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है। वह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है। पूर्ण चैतन्यचन्द्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दर से चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है—सब उछलता है। धन्य मुनिदशा!

☆

चेतकर रहना। 'मुझे आता है' ऐसे जानपने के अभिमान के रास्ते

चढ़ना नहीं। विभाव के रास्ते तो अनादि से चढ़ा हुआ ही है। वहाँ से रोकने के लिये गुरु चाहिए। एक अपनी लगाम और दूसरी गुरु की लगाम हो तो जीव वापस मुड़े।

जानपने के अभिमान से दूर रहना अच्छा है। बाह्य प्रसिद्धि के प्रसंगों से दूर भागने में लाभ है। वह सब प्रसंग निःसार है; सारभूत एक आत्मस्वभाव है।

मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश कर अद्‌भुत ऋद्धि अनुभव करते हैं। उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार के चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में और आश्चर्यकारी आनन्द तरंगों में डोलता है। मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई अलग ही है, वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं, जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे।

जीव अपनी लगन से ज्ञायक परिणति को पहुँचता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभावभाव से पृथक् हूँ, किसी भी पर्याय में अटकनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं अगाध गुणों से भरपूर हूँ, मैं ध्रुव हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं परमपारिणामिकभाव हूँ—ऐसा, सम्यक् प्रतीति के लिये लगनीवाले आत्मार्थी को अनेक प्रकार के विचार आते हैं। परन्तु उनके निमित्त से उपजती सम्यक् प्रतीति का तो एक ही प्रकार होता है। प्रतीति के लिये विचारों के सर्व प्रकारों में 'मैं ज्ञायक हूँ', यह प्रकार मूलभूत है।

ज्ञानी को स्वानुभूति के समय या उपयोग बाहर आवे, तब दृष्टि तल पर कायम टिकी हुई है। बाहर एकमेक हुआ दिखे, तब भी वह तो (दृष्टि अपेक्षा से) गहरी-गहरी गुफा में से बाहर निकलता ही नहीं।

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्य पर दृष्टि रखने से ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि स्थिर कर। निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। द्रव्यदृष्टि करने से ही आगे जाया जाता है। शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं जाया जाता। द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यस्वभाव का ही स्वीकार होता है।

प्रश्न—जिज्ञासु को चौबीसों घण्टे आत्मा के विचार चलते हैं ?

उत्तर—विचार चौबीसों घण्टे नहीं चलते। परन्तु आत्मा का खटका, लगन, रुचि, उत्साह बना रहता है। 'मुझे आत्मा का करना है, मुझे आत्मा को पहिचानना है' इस प्रकार लक्ष्य बारम्बार आत्मा की ओर मुड़ता रहता है।

काल अनादि है, जीव अनादि है, जीव ने दो प्राप्त नहीं किये—जिनवरस्वामी और सम्यक्त्व। जिनवरस्वामी मिले परन्तु पहिचाने नहीं, इसलिए मिले, वे नहीं मिले बराबर हैं। अनादि काल से जीव अन्दर में जाता नहीं और नवीनता प्राप्त करता नहीं; एक से एक विषय

का—शुभाशुभभाव का-पिष्टपेषण किया ही करता है, थकता ही नहीं। अशुभ में से शुभ में और फिर वापस शुभ में से अशुभ में जाता है। यदि शुभभाव से मुक्ति होती हो तो कब की हो गयी होती! अब, यदि पूर्व में अनन्त बार किये हुए शुभभाव का विश्वास छोड़कर, जीव अपूर्व नवीन भाव को करे—जिनवरस्वामी ने उपदेशित शुद्ध सम्यक् परिणति करे, तो वह अवश्य शाश्वत् सुख को पावे।

मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धि से भरपूर चैतन्यमहल में निवास करते हैं; चैतन्यलोक में अनन्त प्रकार का देखने का है, उसका अवलोकन करते हैं; अतीन्द्रिय-आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजन के थाल भरे हैं, वह भोजन जीमते हैं। समरसमय अचिन्त्य दशा है!

पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसके ही आलम्बन से, पूर्णता प्रगट होती है। यह अखण्ड द्रव्य का आलम्बन वही अखण्ड एक परमपारिणामिक भाव का आलम्बन। ज्ञानी को उस आलम्बन से प्रगट होनेवाली औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक-भावरूप पर्यायों का-व्यक्त होती विभूतियों का वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिए सब छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति—अखण्ड

परमपारिणामिकभाव के प्रति दृष्टि कर, उसके ऊपर ही निरन्तर जोर रख, उसकी ही ओर उपयोग ढले, ऐसा कर।

जैसे एक रत्न का पर्वत हो और एक रत्न का कण हो, वहाँ कण तो वानगीरूप है, पर्वत का प्रकाश और उसकी कीमत बहुत अधिक होती है; उसी प्रकार केवलज्ञान की महिमा श्रुतज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक है। एक समय में सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को सम्पूर्णरूप से जाननेवाले केवलज्ञान में और अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञान में-भले वह अन्तर्मुहूर्त में समस्त श्रुत का पारायण कर जानेवाला श्रुतकेवली का श्रुतज्ञान हो तो भी बहुत बड़ा अन्तर है। जहाँ ज्ञान अनन्त किरणों से प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गयी—ऐसे पूर्ण क्षायिक ज्ञान में और खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञान में अनन्त अन्तर है।

चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज, यह वैभव कुछ नहीं चाहिए' इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल में चल निकले। जिन्हें बाहर में किसी बात की कमी नहीं थी। जो चाहे वह जिन्हें मिलता था, जन्म से ही, जन्म होने से पहले भी, इन्द्र जिनकी सेवा में तत्पर रहते थे, लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर करते थे—ऐसे उत्कृष्ट पुण्य के धनी समस्त बाह्य ऋद्धि को छोड़कर उपसर्ग-परीषहों की दरकार किये बिना, आत्मा का ध्यान करने वन में चल निकले तो उन्हें आत्मा सर्व से महिमावन्त, सर्व से विशेष आश्चर्यकारी

लगा होगा और बाहर का सब तुच्छ लगा होगा, तब ही चल निकले होंगे न ? इसलिए, हे जीव ! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर, तेरे अपने से तेरी पहिचान करके, उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ कर। तू स्थिरता अपेक्षा सब बाहर का न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षा तो छोड़ ! छोड़ने से तेरा कुछ चला नहीं जायेगा, अपितु परम पदार्थ आत्मा प्राप्त होगा।

☆

प्रश्न—निर्विकल्प अनुभूति के समय आनन्द कैसा होता है ?

उत्तर—उस आनन्द की, किसी जगत के—विभाव के—आनन्द के साथ, बाहर की किसी वस्तु के साथ, तुलना नहीं है। जिसको अनुभव में आता है, वह जानता है। उसे कोई उपमा लागू नहीं होती। ऐसी अचिन्त्य अद्‌भुत उसकी महिमा है।

☆

हाल में श्री कहान गुरुदेव शास्त्रों के सूक्ष्म रहस्य खोलकर मुक्ति का मार्ग स्पष्ट रीति से समझा रहे हैं। आपश्री ने अपने सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा तत्त्व प्रकाशित कर भारत को जागृत किया है।

गुरुदेव का अमाप उपकार है। इस काल में ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नों से भरपूर गुरुदेव की महिमा और उनके चरणकमल की भक्ति अहोनिश अन्तर में रहो।

☆

बहिनश्री की साधना और वाणी

१. किस विध पूजुं नाथ को रे – विदेहीनाथ सीमन्धर भगवान * २. सीमन्धर! नमुं तुम्हें सिर झुका-झुकाकर * ३. निवृत्ति में चिन्तन * ४. गुरुदेव ने मार्ग बताया है * ५. तत्त्व विचार में मग्न * ६. पूजार्थ गमन * ७. चिन्तन * ८. जिनमन्दिर की ओर गमन

बहिनश्री की साधना और वाणी

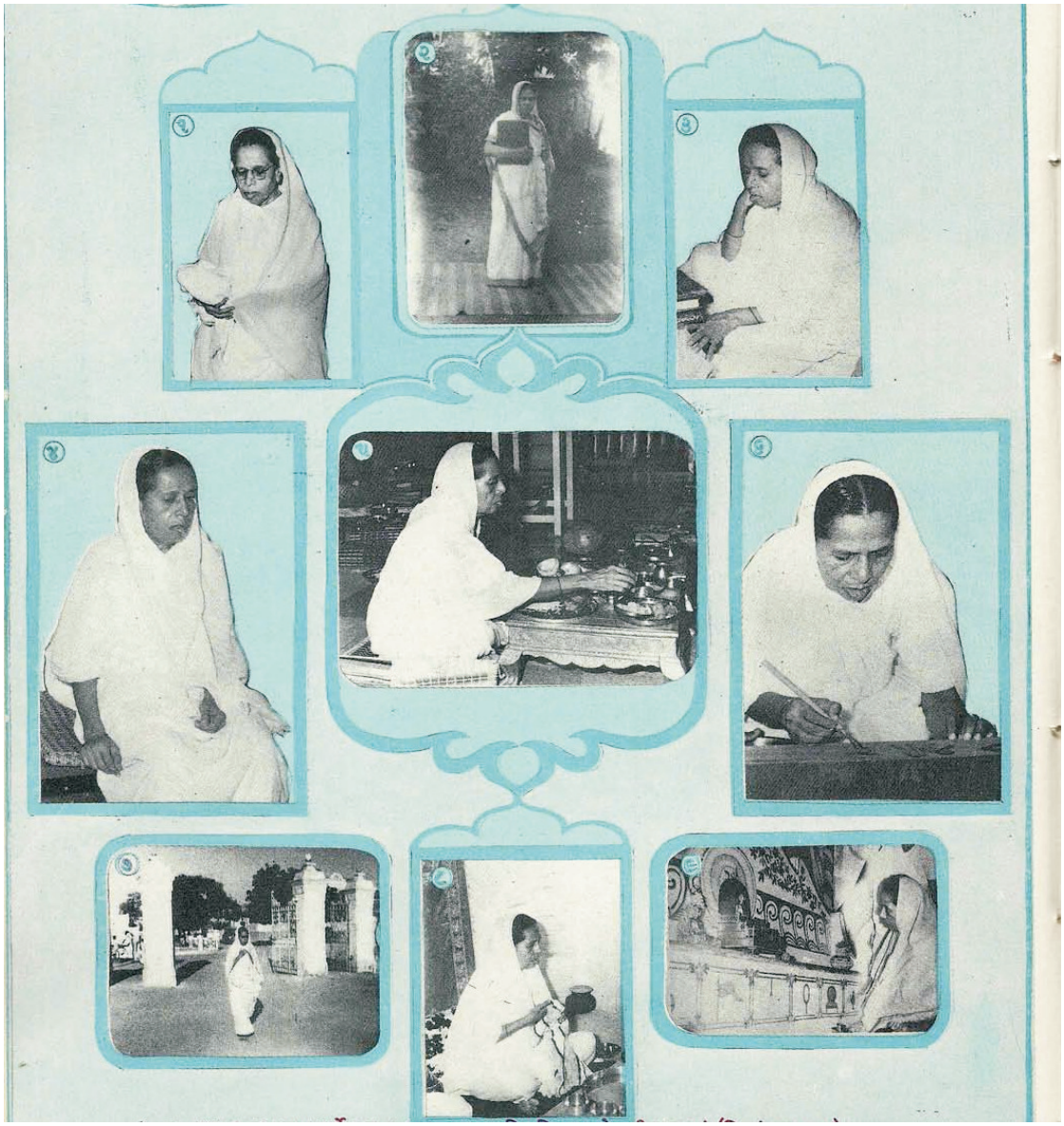

१. गुरु–प्रवचन श्रवणार्थ गमन * २. स्वानुभूति परिणत बहिनश्री सूरत में (वि.स. १९९०) * ३. शास्त्रस्वाध्याय में तल्लीन * ४ . विचारमग्न * ५. .... चंदनं निर्वपामीति स्वाहा * ६. परमागममन्दिर बारसाख पर 'श्री वीतरागाय नमः – आलेखन * ७. * ८ चिन्तनशील * ९. प्रतिष्ठावेदी में जिनवरदर्शन

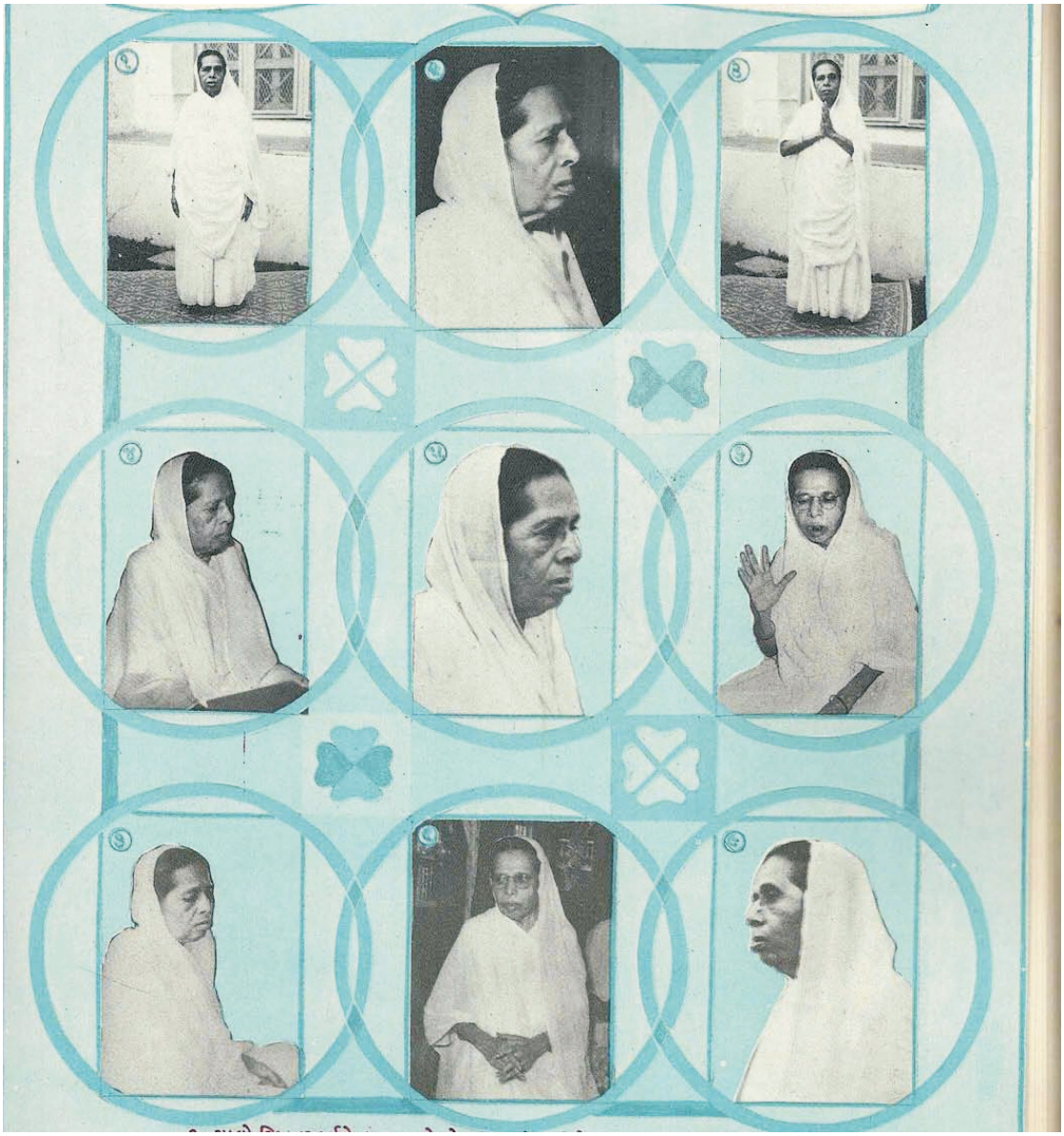

१ चलो जिनदर्शन को २. मुझे तो आत्मा का करना है, ३. प्रांगण में से प्रभुदर्शन ४. चैतन्यगुफा के निवासी * ५. आनन्दरस के आस्वादी * ६. ज्ञायक के मार्ग से सुख की घड़ी * ७. विदेह में हूँ या भरत में * ८. घर में गुरुदेव के आहार प्रसंग पर * ९. निज-नन्दनवन-सुविहारिणी

बहिनश्री की साधना और वाणी

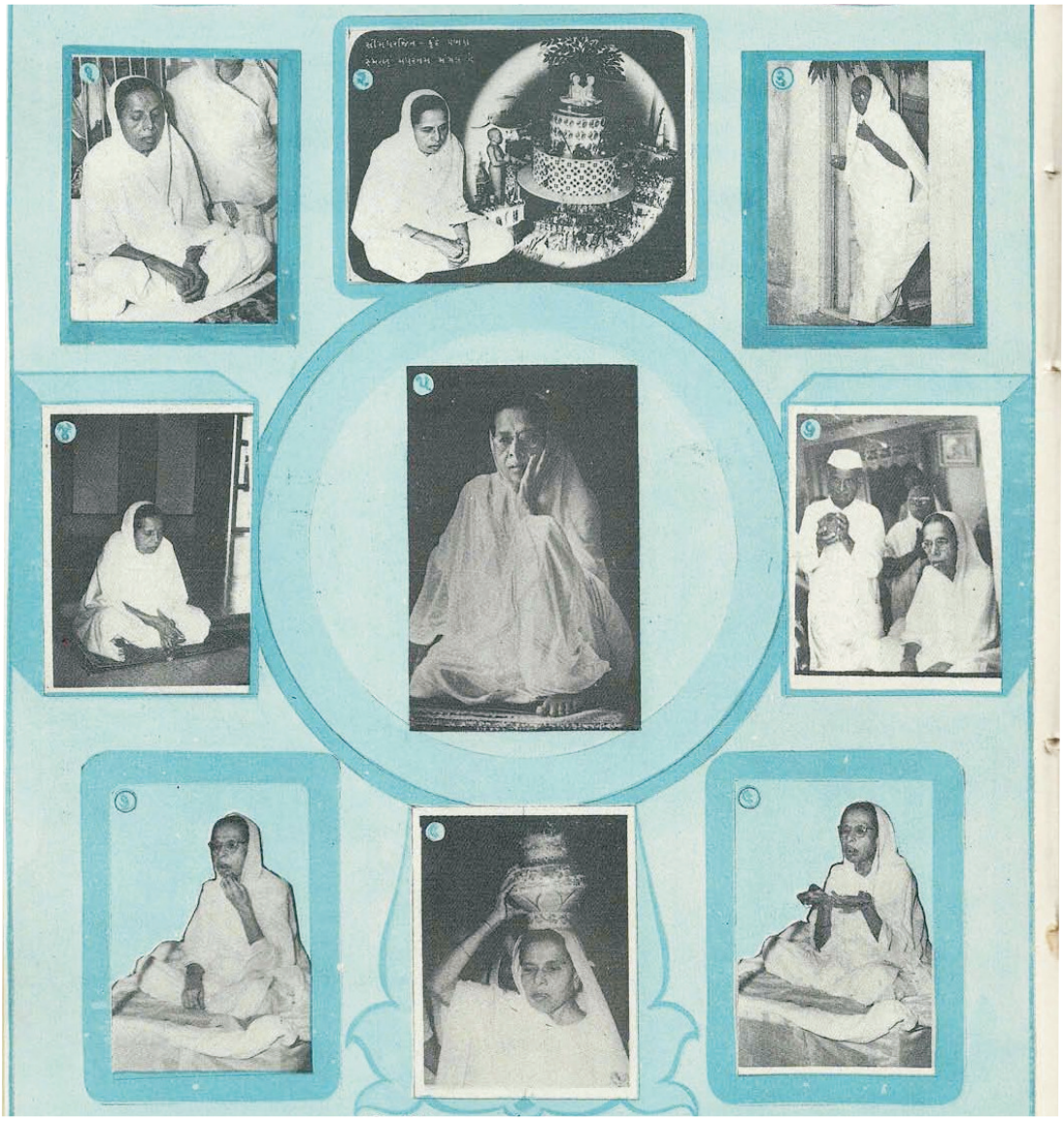

१. जन्मजयन्ती प्रसंग पर * २. समवसरण जिनवर तणो दीखे दृष्टि चितार * ३. पूजा करने जिनमन्दिर में * ४. जिनमन्दिर में ध्यानावस्था * ५. मनन की मग्नता में * ६. जन्मजयन्ती प्रसंग पर हिम्मतभाई द्वारा बहुमान * ७. आत्मा ही एक सार है ८. नांदीविधान कलश * ९. जीवन में सब उपकार गुरुदेव का ही है।

बहिनश्री की साधना और वाणी

१. स्वरूपमन्थन * २. स्वानुभव मुद्रित प्रवचन * ३. ज्ञायक का और देव-गुरु का साथ रखना * ४. सूक्ष्म-सुमति-प्रतिभासी निर्मल नेत्र * ५. अन्तर में उपशमकुम्भ.... बाहर में मंगलकुम्भ * ६. दीपसौं पूजों श्री जिनराय * ७. आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हूँ* ८. गुरु प्रवचन श्रवण * ९. ध्यानदशा अति उत्तम है।

बहिनश्री की साधना और वाणी

१. जिनवरवन्दना * २. पंचमेरु नन्दीश्वर जिनालय में * ३. दृष्टि ज्ञायक पर *
४. स्थिर : आत्मानुभूति में * ५. जिनवरवृन्द पधार्या मारे मंदिरिये (भक्ति) *
६. यह विभावभाव हमारा देश नहीं * ७. तत्त्वविचार में लीनता *
८. जन्मजयन्ती प्रसंग पर हितोपदेश * ९. तत्त्वप्रदेशप्रसंग में अन्तर्लीनता

बहिनश्री की साधना और वाणी

१. प्रभुदर्शन में लीनता * २. जिनवरदर्शन * ३. ॐ जय जिनवरदेवा * ४. जिनालय के प्रशस्तिपत्र पर स्वस्तिक-आलेखन * ५. क्या प्रसन्नता! * ६. नमन सीमन्धरनाथ को * ७. शीतलता की देवी * ८. ध्यानदशा अति मंगल है * ९. निजपद विहारिणी

बहिनश्री की साधना और वाणी

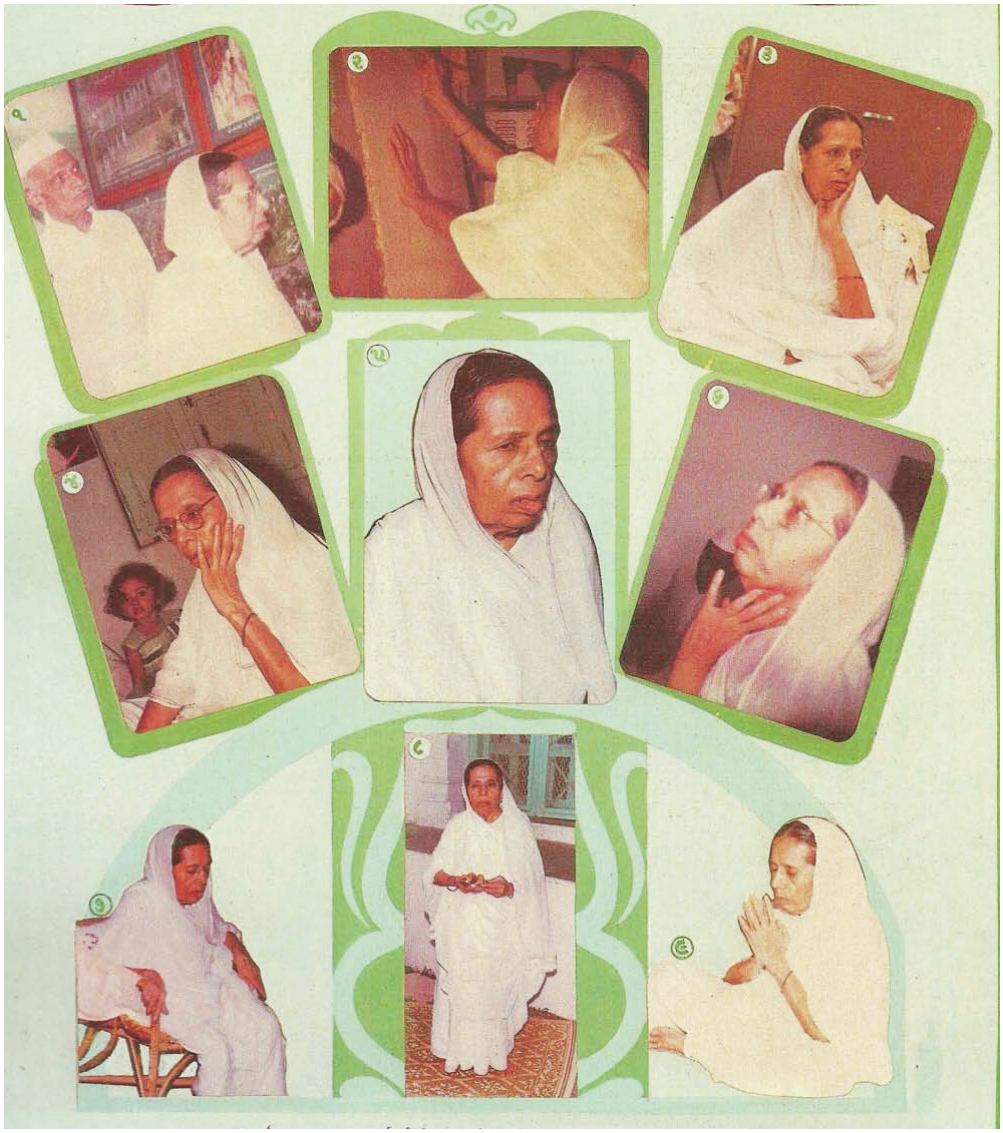

१. कहान गुरु जीवनदर्शन का अवलोकन * २. मार्बल पत्थर पर स्वस्तिक आलेखन *
३. तत्त्वचर्चा प्रसंग पर * ४. क्या गम्भीरता * ५. ज्ञानवैराग्य की पीठ प्रतिभा *
६. ऊर्ध्वता के प्रति नजर * ७. निवृत्ति के क्षण में * ८. पूजा करने जाते हैं *
९. णमो अरिहंताणं

– ५ –

बहिनश्री के वचनामृत के विषय में

प्रमोदपूर्ण अभिव्यक्ति

इस विभाग में, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के परम भक्त और लघुवय से स्वानुभवमुद्रित साधना में अनुरक्त ऐसी प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की अध्यात्मरसभरी वाणी में से चयनित अमूल्य वचन जो **बहिनश्री के वचनामृत** रूप से प्रकाशित हुए हैं और जिन पर पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर प्रवचन प्रकाशित किये हैं, उस शास्त्रोपमगम्भीर, स्वानुभवमार्गदर्शी पुस्तक के सन्दर्भ में, पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में, प्राप्त हुए अनेक जिज्ञासु महानुभावों के प्रमोदपूर्ण हृदयोर्भि भरे पत्रों में से कुछ यहाँ प्रसिद्ध किये जा रहे हैं।

वास्तव में बहिनश्री के वचनामृत आत्मप्राप्ति के लिये एक अमूल्य ग्रन्थ है, जिसका गहन अभ्यास करके लाभ लेनेयोग्य है।

बहिनश्री के वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों के प्रकाशन

संकलित प्रकाशन – वचनामृत प्रवचन भाग–1, 2, 3, 4

शब्दश: प्रकाशन – अमृत प्रवचन, भाग – 1, 2, 3, 4, 5, 6

वचनामृत रहस्य –(नैरोबी में हुए प्रवचन)

अमृतबोध – भाग 1, 2, 3

जन्मवधामणां

(राग : पुरनो मोरलो हो राज)

जन्मवधामणां हो राज! हैडां थनगन थनगन नाचे;
जन्म्यां कुंवरी चंद्रनी धार, मुखडां अमीरस अमीरस सींचे।

(साखी)

कुंवरी पोढे पारणे, जाणे उपशमकंद;
सीमंधरना सोणले मंद हसे मुखचंद।
हेते हीयोणतां हो राज! माता मधुर मधुर मुख मलके;
खेले खेलतां हो राज! भावो सरल सरल उर झणके.... जन्म।

(साखी)

बाणावयथी प्रौढता, वैरागी गुणवंत;
मेरु सम पुरुषार्थथी देख्यो भवनो अंत।
हैयुं भावभीनुं हो राज! हरदम 'चेतन' 'चेतन' धबके;
निर्मल नेनमां हो राज! ज्योति चमक चमक अति चमके.... जन्म।

(साखी)

रिद्धिसिद्धि-निधान छे गंभीर चित्त उदार;
भव्यो पर आ काणमां अद्‌भुत तुझ उपकार।
चंपो म्होरियो हो राज! जगमां मघमघ मघमघ म्हेके;
'चंपा'-पुष्पनी सुवास, अम उर मघमघ मघमघ म्हेके.... जन्म।

'बहिनश्री के वचनामृत' के सन्दर्भ में

प्रमोदपूर्ण अभिव्यक्ति

'बहिनश्री के वचनामृत' के सन्दर्भ में
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़; श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामण्डल तथा
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, मुम्बई के सेक्रेटरी श्री चिमनलाल ठाकरसी मोदी का

एक प्रमोदपूर्ण पत्र

मुम्बई, दिनांक 1.11.1977

धर्मस्नेही आत्मार्थी भाई श्री .....

श्री सोनगढ़

पूज्य कृपा नाथ, सद्गुरु गुरुदेवश्री सुखसाता में विराजमान होंगे। मेरी ओर से भक्तिभाव से वन्दन करना जीजी।

सविनय निवेदन है कि पूज्य भगवती माता बहिनश्री चम्पाबेन के 'वचनामृत' प्रकाशित होने के पश्चात् मुझे प्राप्त होने पर, उनका तुरन्त ही स्वाध्याय करने से उस समय जो भाव उल्लसित हुए थे, वे आपको लिखना चाहता था, परन्तु मेरे पक्ष से प्रमादवशता के कारण तथा कार्यवश कृतसाधन और कारणसाधन के अभाव के कारण कार्य का योग्यता की हद में आना न बनने से लेखनरूप कार्य हुआ नहीं। अब आपके निकट मेरा उल्लास नम्र भाव से प्रस्तुत करता हूँ।

पूज्य बहिनश्री के वचनामृतों का स्वाध्याय करने पर ऐसा भाव हुआ

कि 'यह पूज्य बहिनश्री के वचनामृत हैं या भगवान की दिव्यध्वनि के साररूप आगम वचनामृत हैं !'

शब्दरचना, ज्ञानरचना, भावरचना, मन्थन रचना, और अनुभव रचना से सर्वांग सुन्दररूप से रचित इस कृति की-अनुभव के रंग से रंगी हुई-सराबोर हुई, भेदपक्ष से ग्रन्थराज की छोटी सी आवृत्ति और अभेदपक्ष से ग्रन्थराज ही हो, ऐसा निश्चय उपसाति हुई यह गहन तथापि सरल रचना की ऐसी सांगोपांग सरसता, मनोहरता और मधुरता दृष्टिगोचर होने से ऐसा लगता है कि यह 'वचनामृत' पुस्तक वास्तव में इस काल का अलौकिक रत्न है।

पूज्य बहनश्री की अन्तर-अनुभवदशा की तो बात ही क्या! उसका वर्णन तथा उसकी महिमा करना तो अशक्य ही है, परन्तु अन्तर अनुभवदशा में से बाहर आने पर निकले हुए अमूल्य वचनमौक्तिकों से गुँथित यह कृति भी वास्तव में अद्‌भुत ही है।

परम देवाधिदेव जैन परमेश्वर के दिव्यध्वनि के पर्यायार्थिकनय से देखने पर, गणधर भगवान द्वारा रचित बारह अंग और चौदहपूर्वरूप, अंग प्रविष्ट या अंग बाह्यरूप, परम्परानुसार आचार्य भगवन्तों से रचित परमागमरूप से, कोई भी ज्ञानी सन्तों की लघुकाय कृतियोंरूप, परम्परा-अनुसार पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री के उपदेशरूप से या यह नवप्रकाशित वचनामृत रूप से यह भेदरूप दिखता है, परन्तु द्रव्यार्थिकनय से देखने पर, उस दिव्यध्वनि से लेकर यह वचनामृत तक अन्वयरूप से-सामान्य स्वभाव से-भेदमात्र गौण होने पर, यह वचनामृत दिव्यध्वनि के सागर में गर्भित होते ज्ञात होते हैं, क्योंकि प्रत्येक का सार वीतरागता है।

सूत्रजी के नियमानुसार सूत्र में अल्प अक्षर-शब्द विद्वत्ता को सूचित करते हैं, तथा इन वचनामृतों में बहुत्वातीत अक्षर, अल्प शब्द और संक्षिप्त

मार्मिक वाक्य मानो सागर की गम्भीरता को उल्लंघ जाते हों, ऐसा भासित होता है। ऐसी यह कृति, निमित्तता का धर्म बजाती हुई, ज्ञान और आनन्द को प्राप्त कराती, चित्त को प्रसन्नता अर्पित करती है।

परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री बारम्बार अपने को पूज्य बहिनश्री तथा उनके गुणों का माहात्म्य जो फरमाते हैं, वह इस कृति से विशेष सार्थक सिद्ध होता है, इतना ही नहीं, परन्तु आज तक जिन्हें पूज्य बहिनश्री तथा उनके गुणों का परिचय और महिमा नहीं थी, उन्हें यह वचनामृत उनका माहात्म्यपूर्वक परिचय कराते हैं, महिमा उपजाते हैं।

जयवन्त वर्तो यह वचनामृत कि जो अन्तर अनुभव में से बाहर आती दशा में पूज्य बहिनश्री के श्रीमुख से निकले हुए, अमूल्य मौक्तिक्यमालारूप गुँथित, दिव्यध्वनि के साररूप आगमवचनामृत हैं।

पूज्य कृपालु सद्गुरुदेवश्री का तो अपने ऊपर अनन्त-अनन्त उपकार वर्तता है ही, परन्तु जिन्होंने अपनी आन्तरिक निर्मलदशा से तथा जातिस्मरण -ज्ञान से देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा की दृढ़ता के कारणरूप ज्ञान से अपने को प्रभावित किया है, उन भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का भी अनन्त उपकार है।

इस कृति का शीर्षक 'बहिनश्री के वचनामृत' है, उसके बदले 'पूज्य बहिनश्री के श्रीमुख से गुंथित आगमवचनामृत' ऐसा कोई शीर्षक रखा होता तो अच्छा—ऐसा मेरा नम्र सूचन है। दूसरा सूचन यह है कि अभी वचनामृतों का संकलन जो अक्रम से है, उसके बदले गुरु का दासत्व, देव-गुरु की महिमा, अनुभवपूर्वक देखी हुई मुनिदशा की स्थिति का वर्णन, द्रव्य-गुण-पर्याय, सम्यग्दर्शन का विषय और अनुभवदशा—इस प्रकार यदि विषयवार संकलन का क्रम हो तो स्वाध्याय करने में अनुकूलता रहे। यह तो मेरा मात्र नम्र सूचन

है। वैसे तो इस कृति में प्रत्येक विषय की सांगोपांग रचना इतनी सुन्दरता से प्रस्तुत की गयी है कि जिससे किसी को विरोध का छोटा सा भी भासमात्र भी न हो। ऐसी सर्वांग अविरोधता को प्राप्त यह कृति वास्तव में धन्य है।

वास्तव में इस प्रकाशन द्वारा पूज्य कृपालु सद्गुरुदेवश्री के उपदेश के गहन मर्म को स्पष्टरूप से खोलने की पूज्य बहिनश्री की अलौकिक शैली के दर्शन होते हैं।

वन्दन हो पूज्य कृपानाथ सद्गुरुदेवश्री को, वन्दन हो पूज्य सद्गुरुदेवश्री अनन्य भक्त, अपने को दासत्व का आदर्श प्रदान करनेवाले पूज्य भगवती माता बहिनश्री चम्पाबेन को और वन्दन हो उनकी इस आगम वचनामृत की कृति को।

धन्य है इन वचनामृतों का संकलन करनेवाली ब्रह्मचारिणी बहिनें!

पूज्य बहिनश्री सुखसाता में विराजमान होंगी। मेरी ओर से भक्तिभाव से वन्दन कहना जी।

दासत्व इच्छुक-
चिमनलाल मोदी का सद्गुरुवन्दन।

☆☆☆

प्रोफेसर की ऊर्मि भरी अभिव्यक्ति

भावनगर की शामळदास कालेज के अर्धमागधी भाषा के
प्रोफेसर श्री अरुणभाई शान्तिलाल जोशी 'बहिनश्री के वचनामृत'
पुस्तक के सन्दर्भ में पूज्य गुरुदेव के प्रति अपने पत्र में लिखते हैं कि —

आपके करकमल द्वारा प्राप्त हुई पुस्तक 'बहिनश्री के वचनामृत' अर्थात् 'रत्नों का खजाना'। 'बेकन' नाम का विद्वान जिसे 'चबाकर पचाने जैसी पुस्तक' गिनते हैं, वैसी अमूल्य पुस्तक। प्रत्येक पेरेग्राफ एक-एक

रत्न जैसा है। संस्कृत में कहा गया है कि पृथ्वी पर तीन रत्न हैं :— जल, अन्न और सुभाषित। पत्थर के टुकड़ों को तो मूर्ख लोग ही रत्न कहते हैं। ऐसा होने से ही मुझे यह पुस्तक रत्नों के खजाने जैसा लगा है। एक-एक वचनामृत जीवन के मार्ग पर प्रकाश बिछा देनेवाला है। जैसे-जैसे पढ़ते जाता हूँ, वैसे-वैसे ज्ञान की क्षितिज विस्तरित होती जाती है और मेरे किसी सुकृत से मुझे ऐसा लाभ प्राप्त हुआ, ऐसा लगता है। पूज्य बहिनश्री ने ऐसी सुन्दर वाणी बहाकर मानवजगत पर वास्तव में कल्याण की वर्षा की है। मैं भी उस वर्षा में भींगने का अनुभव कर रहा हूँ—यह मेरा सद्भाग्य। उन्हें मेरा आदरपूर्वक वन्दन।

☆☆☆

बहिनश्री के वचनामृत : एक अध्ययन

कु.अस्मिताबेन लखुभाई भलाणी, बोटाद
(बी.ए., एल.एल.बी., एडवोकेट)

पुस्तकों में पढ़ा है कि श्रीकृष्ण की मुरली का नाद जनगण को पागल बना देता था, उनका एक-एक सूर मन्त्रमुग्ध कर देता था। वह कथनी जो हो वह, परन्तु इस उपमा की तरह पूज्य बहिनश्री का यह शास्त्र—वचनामृत उसकी सीढ़ी लगाता है; उसका एक-एक शब्द मन्त्रमुग्ध कर देता है, पागल बना देता है, पागलतर कर देता है। (जगत के चतुर लोगों को उनकी पकड़ में से न छूटनेवाला व्यक्ति पागल दिखता है।)खाते-पीते, उठते-बैठते या कोई भी प्रवृत्ति करते हुए, जादूगर के जादू की भाँति, उन शब्दों का खिचाव उनकी ओर और उनकी ओर खींचा ही करता है। यदि बिना अर्थ की शब्दजाल होती तो ऐसा नहीं होता, मात्र

अर्थ होता तो व्यक्ति मात्र गम्भीर बनता; परन्तु यह शब्द नहीं, अर्थ नहीं, यह तो है यथार्थ अनुभव का निचोड़ !!

यह कोई छीछोला नीर नहीं है परन्तु जिसे शरीर का रोग मिटाने की भी फुरसत नहीं, जो दुनिया में कहीं राग-द्वेष से देखते नहीं, उनके लिये सम्पूर्ण चैतन्यमय ही है। वह धीर, गम्भीर, गहन और सागरसम विशाल व्यक्ति की प्रतिभा की यह अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति को, प्रतिभा को पहिचान सके तो बहुत प्राप्त कर सके, जो कहना कठिन है।

हाँ, यह 'शास्त्र' ही है। 'वचनामृत' के वचन भले टुकड़े-टुकड़े, टुकड़े-टुकड़े सीप की मोती की भाँति झेले गये हों, परन्तु सलंग डोरी से पिराये जाने से मोती की माला बन जाने के पश्चात् अवश्य ये वचन न रहकर 'शास्त्र' बन जाते हैं। इन्हें 'शास्त्र' कहने में अत्युक्ति नहीं है। इस शास्त्र का पठन, अध्ययन, मनन, एक नहीं परन्तु अनेक बार हो तो भी उसके गहरे नाद के असर से मुक्त नहीं हुआ जाता; उल्टे, बारम्बार उसकी ओर दौड़ जाया जाता है, उखड़ने का मन नहीं होता, ऐसा उसका भारी असर है। एक-एक शब्द में उसके स्वभाव का अपना अद्‌भुत वजन है, उसकी शक्ति अणुमहान है, उसकी गम्भीरता महासागर की है। बारम्बार कहने का मन होता है कि शब्दों की अभिव्यक्ति यथार्थता की है।

शैली की सरलता की क्या बात करना! अरे, चरस चलानेवाला कोशिया पढ़े या विद्वत्ता धरानेवाला पण्डित पठन करे, दोनों समान असर प्राप्त करेंगे। क्योंकि सीधे-सादे लोगों को भाषा की भभक की आवश्यकता नहीं है, उन्हें समझ में आया कि 'विभाव छोड़, तेरे आत्मा

की साधना कर', इसलिए तुरंत ही इस हकीकत को हकीकत समझकर आगे चलेगा और विद्वत्तापूर्ण व्यक्ति को, पढ़ने पर ख्याल आ जाता है कि यह शब्दजाल नहीं, इसमें भभक की आवश्यकता नहीं; भाषारूपी छिलकों को फेंककर सीधा खोपरे का गोला और उसके पीछे का अमृतवारि वचनामृत में बताया है, वहाँ उपमा या विशेषणों की आवश्यकता कहाँ रही!

'हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो आत्मा में रुचि लगा।' देखो, यह वाक्य! इसमें रहे हुए शब्दों को कहाँ संस्कृत की आवश्यकता? सादा, सरल और तो भी हृदय में सीधे उतर जानेवाला, स्थिर कर देनेवाला विचार में रख देनेवाला उनका वचन है।

'एक वस्तु खोई, वहाँ स्वयं पूरा खो गया।' कैसा संक्षिप्त तथा गम्भीर सत्य सिद्धान्त समझानेवाला, रूकावट करानेवाला वाक्य! तूफानी घोड़ा जैसे उसके मालिक की प्रेमभरी हाँक से स्थिर हो जाता है, उसी प्रकार जीव के प्रति कारुण्यभाव से कहे गये एक-एक वाक्य पढ़ते हुए इस चंचल जीव को राग में जाने से रुक जाना पड़ता है—इतने वाक्य में कितनी सचोटता?! लोगों के पास इसका क्या जवाब? क्या तर्क करे या क्या वितर्क करे? यह महान सत्य समझाने के लिये, क्या उन्होंने उपदेश दिया है? पाण्डित्य का भार लादा है? बौद्धिकता के चमकार बतलाये हैं? नहीं, रे नहीं, यह तो संक्षिप्त में हकीकत कही है,—सादी और सरल रीति से यथार्थ भूमिका की।

समग्र वचनामृत का पठन करो। कौन सा शब्द अधिक है? अरे

किस शब्द की त्रुटि है ? खोजकर तो दो ! कौनसा शब्द अर्थसभर नहीं है ? कौनसा शब्द मानव को जगानेवाले नाद का साद नहीं है ? अरे ! यह तो बंसुरी की सुरावली का सार है। एक-एक शब्द एक-एक सूर है और एक-एक सूर आत्मा को—घोर निद्रा में पड़े आत्मा को—आलस झंझोरकर खड़ा करता है। उसके सतत मंथन से मनुष्य की ताकत नहीं कि फिर से निद्राधीन हो। एक बार नहीं, दो बार नहीं, अनेक बार पढ़ो; पढ़ो और विचारो; रोम-रोम में जागृति आयेगी, बैठे हो जाओगे। आलस्य के पल पर, तुम्हारी जाति पर, तुमको ही अरुचि आयेगी। उस-मय होने का तुम्हारा मन, हृदय, बुद्धि तड़पा करेगी। साहजिकता की भूमि में प्रवेश करने को तड़पड़ाहट जागृत होगी। कनकसम वचनामृत की सादी, सरल, सचोट वाणी का यह प्रभाव है।

वचनामृत के वांचन से मति स्थिर होने का प्रयत्न करेगी, तर्क शमित होने लगेंगे। बारम्बार कहती हूँ कि तर्क-वितर्क को यहाँ कोई स्थान नहीं है। क्योंकि यह कोई शब्दजाल नहीं। यह तो अनुभव के अगोचर की फलश्रुति है।

सिद्ध भगवान की बात करते हुए पूज्य बहिनश्री कहती हैं—'सिद्ध भगवान को प्रगट हुई शान्ति की तो क्या बात ! उनको तो मानो शान्ति का सागर उछल रहा हो, ऐसी अमाप शान्ति होती है; मानो आनन्द का समुद्र हिलोरें ले रहा हो, ऐसा अपार आनन्द होता है।' आनन्द के समुद्र को हिलोरें लेता मानकर कौन ऐसा पामर आत्मा होगा कि ऐसी बात सुनने, भले एक दिन नहीं, घण्टे नहीं तो मात्र पल भी न अटके ? नीरी मूढ़ता में

पड़े हुए व्यक्ति को भी यह वाक्य अन्ततः एक क्षण तो जगा ही देता है। जिसे रुचि जगी हो, जिसे झंखना लगी हो, वह तो अवश्य हिल जाता है, उस-मय हो जाता है।

वचनामृत का एक-एक वाक्य, एक-एक शब्द और उसके पीछे रहा हुआ अर्थ / हकीकत हृदयरूपी शिला पर उत्कीर्ण हो जाते हैं। ठोस सत्य को स्थल के या काल के बन्धन अवरोधक नहीं है। इस सत्य को जंग लगनेवाली नहीं है। इसकी धार तीक्ष्ण ही रहनेवाली है; उसे घिसने की कभी आवश्यकता पड़नेवाली नहीं है। तीन काल, तीन लोक में हजारों वर्ष क्या, लाखों वर्ष क्या, परन्तु जब तक अस्तित्व है, तब तक वचनामृत स्थायी है, स्थिर है, चमकवाला, वैसा का वैसा जलहलता, शाश्वत् और यथार्थ है!!!

उसमें बसे हुए आत्मा की भूमिका कल्पित करना वह पामर जीव का कार्य नहीं है, उसे वैसा ही आत्मा पहिचान सकता है और समझ सकता है। हो सके वैसा तो मात्र इतना ही है कि उन्हें कोटि-कोटि वन्दन हो!!

☆☆☆

अमरेली निवासी वेदान्त के अभ्यासी एक जैनेतर भाई ने लिखे हुए स्वयं के

हृदयोद्‌गार

'बहिनश्री के वचनामृत' मेरे मित्र श्री अमुभाई से पढ़ने को प्राप्त हुआ। शुरु से अन्त तक प्रेमपूर्वक पढ़ा। भूखे मनुष्य को जैसे भोजन से तृप्ति, पुष्टि और भूखनिवारण एकसाथ अनुभव में आते हैं, उसी प्रकार

आत्मज्ञान के जिज्ञासु को इस पुस्तक का वाँचन आत्मज्ञान, स्वरूपभक्ति और पौद्‌गलिक पदार्थ के प्रति पूर्ण वैराग्य का फल प्रदाता वाँचन है। भाषा सादी, सरल और सचोट घरेलु होकर आत्मज्ञान के अज्ञात व्यक्ति को भी तुरन्त समझने में आवे ऐसा है। लिखनेवाले लेखक ने अपनी शुद्ध अनुभूति को ही भाषा का साकार देह प्रदान किया है। पौद्‌गलिक पदार्थों के मोह से आकर्षित होकर मनुष्य-आत्मा अपने सच्चे आत्मस्वरूप को भूल गया है और विपरीत भावनाओं के विकल्प सेवन कर अशान्ति और सतत उलझन अनुभव कर रहा है। ऐसे आत्माओं को इस पवित्र ग्रन्थ का वांचन, जो सीधा अनुभूति के प्रदेश में से उतर आया है वह, सच्ची शान्ति, सच्ची समझ और सच्चे सुख-प्रकाश का अनुभव प्रदान करनेवाला है, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है।

☆☆☆

वींछिया निवासी अध्यात्मप्रेमी पण्डित श्री हिम्मतलाल बालजीभाई के
'बहिनश्री के वचनामृत' के सम्बन्ध में

भक्तिभीने भावोद्‌गार

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित पंच परमागम जैसे अमरकृति है, सोनगढ़ में रचित परमागममन्दिर जैसे एक महान अमरकृति है, उसी प्रकार पूज्य बहिनश्री के वचनामृत भारतीय जैन साहित्य की एक अमतकृति है, जिसमें स्वानुभूति के रणकार हैं, आनन्द की झनझनाहट है, मोक्ष का भणकार है—ऐसा प्रत्येक बोल बारम्बार पढ़ने की भावना जागृत होती है और प्रत्येक समय पढ़ते हुए नवीनता लगती है। भव्य पात्र जीवों

को स्वानुभूति की डोर सांधने में प्रत्येक बोल में से पुरुषार्थ की प्रेरणा प्राप्त होती है। नियमसार में आचार्य भगवान ने जैसे कारणपरमात्मा को गाया है, वैसे वचनामृत में कारणपरमात्मा की अपार महिमा गाकर जीवात्मा को जगाया है।

वर्तमान युग में पूज्य सद्गुरुदेवश्री का महान उपकार है, उसी प्रकार पूज्य भगवती माता का वर्तमान जैन समाज पर वास्तव में असीम उपकार है। भाषा सुगम, सरल, मीठी और मधुर, भाव बहुत उत्कृष्ट और गहरे! दिव्यध्वनि का झरना झरा है। सम्प्रदायवाले पढ़ें तो भी उन्हें अनुकूल हो ऐसी अति प्रधान शैली है। पूज्य भगवती माता तो पूजनीय है ही, परन्तु उनके मुखकमल में से प्रवाहित यह वाक्गंगा भी पूजनीय और वन्दनीय है।

'आनन्द तो तल में से आवे, वही सच्चा है'—एक बोल में कितना कह जाते हैं! अहो वाणी! तेरी महिमा कैसे हो?

बनाऊँ पत्र चेतन के, स्वानुभूति के अक्षर लिखी,
तथापि मातसूत्रों के अंकाये मूल्य न कभी।

☆☆☆

बहिनश्री के वचनामृत के सम्बन्ध में

प्रमोदपूर्ण अभिमत

(भावनगर की शामळदास कॉलेज के प्रोफेसर श्री अरुणभाई शान्तिलाल जेपीने गोपनाथ के महन्तश्री द्वारा 'बहिनश्री के वचनामृत' के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये उद्गार, उनके जिस पत्र में प्रस्तुत किये हैं, वह यहाँ दिया जा रहा है।)

भावनगर, 12 नवम्बर 1979

परमपूज्य श्री गुरुदेव महाराज साहेब की सेवा में,

सादर विदित करना है कि..... गत कल गोपनाथ गया था। वहाँ श्री केशवानन्द बापू के दर्शनार्थ गया था। वे आपको लगभग 40 वर्ष पहले मिले हैं, उसे स्मरण करते थे। उनके हाथ में 'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक देखकर बहुत ही आनन्द हुआ। उन्हें यह पुस्तक बहुत ही रुचिकर हुआ है; और मुझे कहते थे कि बड़े-बड़े उपनिषदों में जो कुछ है, उसकी अपेक्षा भी इस पुस्तक में सुन्दर सामग्री रही है; और कितने ही वचनामृत वार्तालाप के दौरान बारम्बार बोलते थे। मैंने भी उन्हें वचनामृत सुनाये। उन्हें बहुत ही आनन्द हुआ है। वे प्रशंसा करते हुए थकते नहीं थे।

भारतीय संस्कृति के ऊपर निबन्ध में मुझे प्रथम पारितोषिक ढाई सौ रुपये का प्राप्त हुआ है, जो आपके आशीर्वाद के कारण है, ऐसा मानता हूँ।

लि. भवदीय

अरुण के सादर प्रणाम

☆☆☆

'बहिनश्री के वचनामृत' के सम्बन्ध में नैरोबी के वकील

श्री कान्तिभाई शाह का पत्र

NAIROBI, 11-3-80

परमपूज्य गुरुदेव,

आपने दिनांक 28-01-1980 के मंगल प्रभात यहाँ से विदा लेकर मुम्बई की ओर विहार किया। आपकी प्रतिमा हृदय में बस गयी है और याद दिन-प्रतिदिन तीव्र बनती जाती है। इस अनार्य देश में अधर्मी जीवों

को आपने 'भगवान' कहकर सम्बोधन किया और 'आत्मा सो परमात्मा' का सरल और निर्मल मन्त्र घोल-घोलकर परोसा। आत्मा की गहराई उलेचने का पुरुषार्थ स्वयं ही करना है, परन्तु अनुभव से बताया कि देव-गुरु के साथ और संगात से पुरुषार्थ को दोगुना किया है.....

आपश्री के आशीर्वाद के साथ 'बहिनश्री के वचनामृत' पढ़ने की शुरुआत की। वाक्य, वाक्य दिल को रुचे, वहाँ लाल लाईन (अण्डर लाईन) की। एक बार वाँचन पूरा किया। लगन लगी; और दूसरी बार, तीसरी बार वाँचन शुरु किया। देखा तो एक-एक वाक्य में, एक-एक शब्द में लाल लाईन (अण्डर लाईन) हो गयी है। एक-एक शब्द में अमृत के कुंज भरे हैं। वास्तव में अमृत का सागर है। अमृत का एक बूँद भी कैसे छोड़ा जाये ? एक-एक शब्द में से अनेक अर्थ निकलते हैं और आत्मा की गहराई में से जवाब मिलता है। आनन्द की लहरें उछलती हैं, हृदय को आनन्द से भर देती हैं। आनन्द का सागर उछलता है और उसकी लहरें ठेठ आँख में से अश्रु के प्रपातरूप से बहती है। ऐसी दशा प्रगट हुई है कि अश्रु रोकने की शक्ति रही नहीं।

इस पुस्तक में तो चैतन्य-आनन्द उछालने की चाबी है। यह महान पुस्तक इस पंचम काल में प्रगट करके बहिनश्री ने मुमुक्षुओं को मोक्ष का मार्ग स्पष्ट किया है। बहिनश्री को मेरे कोटि-कोटि वन्दन। बहिनश्री के प्रति ऋण व्यक्त करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। पुस्तक का वाँचन करते हुए घड़ी-घड़ी में आत्मा के अन्दर में प्रवेश हो जाये, ऐसी इस पुस्तक की महिमा है।

वकालत बहुत की, बहुत बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ी, परन्तु

'बहिनश्री के वचनामृत' की तुलना में आवे, ऐसी पुस्तक जानने में नहीं आयी; वहाँ वाँचन की तो बात ही कहाँ रही ? 'न भूतो, न भविष्यति'— ऐसी यह पुस्तक है। स्कूलों में, कॉलेजों में तथा यूनिवर्सिटी में पर की वकालत करना सीखा परन्तु आज तक कहीं स्वयं की-आत्मा की वकालत की बात तक जानने को मिली नहीं। यह पहली पुस्तक है जिसमें अपनी-आत्मा की वकालत की बात जानने को मिली है; 'है', 'है' और 'है'—यह त्रिकाली सत्य जानने को मिला।

परमपूज्य गुरुदेव! आपकी दिव्यवाणी सुनने तथा बहिनश्री के दर्शन करने अवश्य सोनगढ़ आना है। भावना भायी है तो जरूर यह लाभ प्राप्त होगा ही। इस समय का आपश्री का विहार बहुत लम्बा है। पूज्य कहान गुरुदेव से तो मुक्ति का मार्ग मिला है। आपने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है। आपश्री का अपार उपकार है, वह कैसे भूला जाये ? यही....

लि.

कान्तिभाई शाह (वकील, जामनगरवाला)

का जयजिनेन्द्र

☆☆☆

'बहिनश्री चम्पाबेन वचनामृतभवन' के सम्बन्ध में

उल्लासपूर्ण प्रमोद

भावनगर के शामळदास कॉलेज के संकृत और प्राकृत भाषा के प्रोफेसर श्री अरुणभाई जेपी, 'बहिनश्री चम्पाबेन वचनामृतभवन' के शिलान्यास की निमन्त्रण पत्रिका पढ़कर प्रमुख श्री के प्रति अपने 24.10-1980 के पत्र में बहुत ही उल्लासपूर्वक प्रमोद व्यक्त करते हुए बतलाते हैं कि :—

'....प्रशममूर्ति पूज्य भगवती माता बहिनश्री चम्पाबेन के निर्मल हृदय में से प्रवाहित अमृतधारारूप विचार-मौक्तिकों को आपने संगमरमर में उत्कीर्ण करने की योजना की, वह बहुत ही धन्यवाद का पात्र बना है। ऐसे बहुमूल्य विचाररत्नों को ऐतिहासिक रीति से एक भव्य सांस्कृतिक उत्तराधिकार बना रहेगा, इस विचार से मेरा मन प्रमोद अनुभव करता है। ऐसा सुयोग्य कार्य पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल छत्रछाया में आकार ले रहा है, इससे तो सोने में सुगन्ध के समान ही कहलायेगा। सब प्रयोजक मुमुक्षुओं को, जिन्हें ऐसा सद्विचार प्रगट हुआ उन्हें, मेरा हार्दिक अभिनन्दन प्रेषित करता हूँ.....'

☆☆☆

— ६ —

गुरुदेवश्री के हृदयोद्‌गार

इस विभाग में, पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन तथा 'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक सम्बन्धी परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रसन्नतापूर्वक उच्चारित 'हृदयोद्‌गार' दिये गये हैं।

परमपूज्य अध्यात्मयुगसृष्टा करुणासागर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का समस्त मुमुक्षु जगत पर अनन्त-अनन्त उपकार है। आपश्री के विविध उपकारों में से एक महान उपकार यह है कि आपश्री ने अपने को प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के पवित्र अलौकिक अन्तरंगदशा की यथार्थ पहिचान करायी है।

प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की—उनकी जन्म-जयन्ती के मांगलिक प्रसंग तथा अन्य दिनों में (सोनगढ़ में तथा अन्यत्र) प्रवचन, तत्त्वचर्चा इत्यादि के समय अनेक बार निर्मल स्वानुभूति, धर्माद्योतकारी सातिशय जातिस्मरणज्ञान, राग-राग में व्याप्त निर्मानता, स्फटिकसम स्वच्छ सरलता, प्रशमरसनितरती उदासीनता और सागर समान गम्भीरता इत्यादि उनके गुणों सम्बन्धी परमपूज्य, परमोपकारी, परमप्रभावक, पुरुषार्थमूर्ति गुरुदेव के श्रीमुख से अत्यन्त अहोभावपूर्वक प्रवाहित सहज उद्‌गारों से सभा का सम्पूर्ण वातावरण अति प्रसन्न हो जाता था।

परमपूज्य गुरुदेवश्री के श्रीमुख से प्रवाहित पूर्व समय के तत्सम्बन्धी उद्‌गारों में से कितने ही यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं, कि जिनके वाँचन-मनन से मुमुक्षुहृदय कुछ शीतलीभूत हो तथा अपने जीवन-निर्माण के सम्यक् पुरुषार्थ की प्रेरणा प्राप्त करें।

मंगल आशीषदाता परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

ॐ

नमः श्री सद्गुरवे

गुरुदेव के हृदयोद्गार

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन सम्बन्धी

(प्रवचन, तत्त्वचर्चा इत्यादि प्रसङ्गों पर)

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मङ्गल उद्गार

(राजकोट, संवत् 2027)

बहिन (चम्पाबेन) तो बहुत ही गम्भीर-गम्भीर! ऐसा आत्मा इस समय हिन्दुस्तान में नहीं है। पवित्रता-परिणति, और शुद्ध परिणति सहित का जातिस्मरणज्ञान है। वैराग्य-वैराग्य! शास्त्र में आता है:—जब तीर्थङ्कर दीक्षा लेते हैं, तब पहले जातिस्मरण होता है — ऐसा नियम है।.... जातिस्मरण हो, तब उपयोग लगाना नहीं पड़ता और तुरन्त ज्ञान हो, क्षण में वैराग्य हो। ऐसा बहिन को हो जाता है। बहिन को जातिस्मरण होने पर वैराग्य बहुत बढ़ गया है; उन्हें बिल्कुल पर की कुछ पड़ी नहीं है।

✳

(राजकोट, संवत् 2027)

....बहिन (चम्पाबेन) को तो इस प्रकार प्रत्यक्ष देखने पर अन्तर में ऐसा हो जाता है, खेद आ जाता है : 'अरेरे! कहाँ थे और कहाँ आ गये!

अरे, प्रत्यक्ष सब दिखता है। अहा! यह संसार! यह प्राणी! यह दुःख!'.... बहुत अच्छा जीव, बहुत ही अच्छा जीव; संसार के किनारे आया हुआ, और ही प्रकार का। स्वयं तो कुछ कहती ही नहीं। यह तो उनकी उम्र हो गयी 58, शरीर सामान्य, भोजन सामान्य... यह तो कैसे निभ रही हैं! ....नाम-ठाम, भविष्य के नाम, तीर्थङ्कर का नाम—सब सिद्ध हो चुकी बातें हैं, (सीमन्धर) भगवान के मुख से कही गयीं। छोटे मुँह ऐसी बातें लोगों को कठिन लगे। एक-एक, अक्षर-अक्षर सिद्ध हुई है। भरतक्षेत्र जैसा क्षेत्र! इस समय ऐसा काल! उसमें यह बात लोगों को कठिन लगे।

✳

(भाद्रपद कृष्ण 2, संवत् 2020)

अरे! यह जीव (बहिनश्री चम्पाबेन) तो कोई अलौकिक है! अधिक बोलती नहीं, इसलिए कुछ नहीं है, ऐसा नहीं है। यह तो गम्भीर द्रव्य है!

इनका पुरुषार्थ तो इतनी प्रबलता से गतिमान है कि यदि वे पुरुष होतीं तो कब की मुनिदीक्षा लेकर वन-जंगल में चली जातीं, यहाँ दिखती भी नहीं; क्या करें, स्त्री का शरीर है!

....जिस प्रकार माला में मनकों का मेर होता है, उसी प्रकार यह तो समस्त मंडल की-मनकों की मेर हैं! इन्हीं से ही मंडल शोभित है। इनसे तो सब नीचे, नीचे और नीचे हैं।

✳

(तारीख 8-11-65)

अरे! इनके दर्शन से तो भव के पाप कट जायें, ऐसा यह जीव है।

[१]सब लोग इनके तलवे चाटें तब भी कम है, ऐसा तो यह द्रव्य है !

✳

(तारीख 21-11-65)

28 वर्ष हो चुके हैं जातिस्मरण हुए, परन्तु बाहर आने की जरा-सी भी जिन्हें (बहिनश्री चम्पाबेन को) वृत्ति नहीं उठती—प्रतिबिम्ब जैसी स्थिर हो गयी हैं। जिन्हें स्वयं को सागरोपम वर्षों का ज्ञान है फिर भी गुप्त! मुझसे भी नहीं कहा। मेरी सब बातें कह जायें, परन्तु अपनी नहीं। ....इनका आत्मा कितना गम्भीर! अलौकिक! अचिन्त्य! अद्भुत!—शब्द कम पड़ते हैं ! यह तो सागर समान गम्भीर हैं।

✳

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिन! लौकिक ज्ञान की ([२]राजुल के जातिस्मरणज्ञान की) इतनी प्रसिद्धि, तब आपका आत्मा तो महान है, आपकी (आपके ज्ञान की) प्रसिद्धि होनी चाहिए।

पूज्य बहिनश्री : साहेब ! दुनिया में प्रसिद्धि करके क्या करना है ?

दुनिया को इनकी (बहिनश्री चम्पाबेन की) कीमत कहाँ से आये ? क्योंकि कुछ बोलती नहीं हैं और बाहर कुछ करके दिखलाती नहीं हैं। दुनिया को तो बाहरी चमत्कार की कीमत है न! इनके अन्तर को वह (दुनिया) क्या जाने ?

✳

---

१. ज्ञानी धर्मात्मा की सन्निकटता आत्मार्थी के लिये गुणकारी होती है एवं जैसे लोक में उपकारी के लिये कहा जाता है कि 'इनके चरण धोकर पीवे तो भी कम है' — इस प्रकार का अभिप्राय यहाँ ग्रहण करना अपेक्षित है। *—अनुवादक*

२. यह राजुल एक मुमुक्षु भाई की पुत्री है, जिसे पूर्व भव का जातिस्मरण हुआ था। *—अनुवादक*

(तारीख 26-11-65)

विक्रम संवत् 1993, बैशाख कृष्णा अष्टमी के दिन बहिन को (बहिनश्री चम्पाबेन को) आत्मा के शुद्धोपयोगरूप निर्विकल्प अनुभव के साथ उपयोग में निर्मलता होने पर जातिस्मरण हुआ।..... सम्यग्दर्शन 1989 में हुआ था। .....ध्यान करते-करते इतनी एकाग्र हो जाती हैं कि स्वयं भरत में हैं या विदेह में, यह भी भूल जाती हैं।..... हम साथ में ही मोक्ष जानेवाले हैं। यह सब बात प्रत्यक्ष हो चुकी है। .....बहिन का (बहिनश्री का) ज्ञान तो अगाध और गम्भीर है।..... यह चम्पाबेन का ज्ञान तो राजुल से अनन्त-अनन्त सामर्थ्यवाला है। उसे तो लौकिक, परन्तु इन्हें तो अलौकिक ज्ञान है। आत्मज्ञान सहित का जातिस्मरण है।.... इन्हें चार भव का ज्ञान है परन्तु गम्भीर इतनी कि कभी प्रगट नहीं करती। मुझसे भी.... अपनी बात नहीं कहे, मेरा सब कह जायें। बहिन तो भगवतीस्वरूप हैं, भगवतीमूर्ति हैं। बोलना तो उन्हें हराम है। कहाँ बोलती ही हैं? इसलिए लोगों को महिमा नहीं आती। इनके जैसी दुनिया में कोई स्त्री नहीं। स्त्रियों के महाभाग्य हैं कि ऐसे काल में—ऐसे मिथ्यात्व की प्रबलता के काल में—इनका यहाँ जन्म! यह तो जो बहुमान करेंगे उनके महाभाग्य हैं।

✳

(राजकोट, तारीख 31-05-67)

सैकड़ों वर्षों में नहीं हुआ, ऐसा आत्मा इस स्त्री-देह में पैदा हुआ है। समाज के इतने पुण्य कहाँ हैं कि यह बात बाहर रखी जाये! लोगों को तो जो बोलता है, उसकी कीमत आती है, यह नहीं बोलतीं, इसलिए

इनकी कीमत नहीं आती। कम बोलती हैं, इसलिए मानो कुछ आता ही न हो—ऐसा लोग मानते हैं।

✳

(फतेपुर, तारीख 03-12-70)

बहिन को (चम्पाबेन को) तो चार भव का ज्ञान (जातिस्मरण) है। असंख्य अरबों वर्ष का ज्ञान है इन्हें! यह तो कोई अलौकिक आत्मा है। चम्पाबेन की शक्ति तो गजब है। नरम... नरम... नरम हैं। स्त्री-शरीर है परन्तु कहीं स्त्री-शरीर थोड़े ही बाधक होता है? 34 वर्ष हो गये हैं उन्हें ज्ञान प्रगट हुए। स्त्रियों में धर्मरतन हैं।

✳

(तारीख 19-6-71)

बहिन (बहिनश्री चम्पाबेन) तो आराधना की देवी हैं। पवित्रता में सारे भारत में अजोड़ हैं। उनकी छत्रछाया सारे सोनगढ़ में है। ओहो! बहिन तो भगवतीस्वरूप हैं। तुझे और कहाँ ढूँढ़ने जाना है? उनके दर्शन कर न! एक बार भाव से जो उनके दर्शन करेगा उसके अनन्त कर्मबन्धन ढीले हो जाएँगे। उनके चरणों से जो लिपटा रहेगा, उसे भले ही सम्यग्दर्शन न हो, तत्त्व का अभ्यास न हो, तो भी उसका बेड़ा पार है।*

✳

सुवर्णपुरी की यह रचना (सीमन्धर भगवान, कुन्दकुन्दाचार्यदेव

* ज्ञानी-धर्मात्मा का संग होने पर, जीव को सत्यमार्ग प्राप्त करने का अवसर है। ज्ञानी-धर्मात्मा की सच्ची पहचान दर्शनमोह की मन्दतापूर्वक उसके अभाव का कारण बनती है और दर्शनमोह / मिथ्यादर्शन का अभाव होने पर, संसार का अभाव निश्चितरूप से होता है। यह आशय इस बोल से ग्रहण करना अपेक्षित है। *—अनुवादक*

इत्यादि की प्रतिष्ठा) उनके विदेह के जातिस्मरण का चित्रण है।

✳

बहिन तो अनमोल रतन हैं; यदि पुरुष होतीं तो एक सेकण्ड भी अलग न रहतीं।

✳

उनके इस फोटो में कितने गहरे भाव आ गये हैं! जब फोटो में ऐसे हैं, तब अन्दर तो और कितने गहरे होंगे?!

✳

बहिनश्री को पुत्री कहूँ, बहिन कहूँ, धर्ममाता कहूँ या साधर्मी कहूँ, जो कुछ कहूँ—सब हैं।

✳

चम्पाबेन तो इस काल का आश्चर्य हैं।

✳

स्त्रियों में तो कोई नहीं, परन्तु वर्तमान में सब.....से उनकी दशा विशेष है।

✳

नहि-वत् माया के परिणाम में यहाँ यह अवतार! नहीं तो वे यहाँ होतीं ही कैसे? पूर्व की अखण्ड बालब्रह्मचारी! उनका अवतार ही यहाँ कहाँ से?

✳

(तारीख 08-07-71)

आज बहिन का जन्मदिन है न!..... सबको कितना उल्लास दिखायी देता है; उन्हें कुछ है ? अध्यात्म में उनकी स्थिति उदास, उदास एवं स्थिर है।

✳

(तारीख 12-09-71)

बहिन (चम्पाबेन) की निर्मलता बहुत-बहुत! निर्मलता-निर्मलता! अपूर्व-अपूर्व स्मरण! शान्त एवं गम्भीर! बहिन तो धर्मरतन हैं। महाविदेह में बहुत निर्मलता थी; वहाँ की निर्मलता लेकर यहाँ आयी हैं। एकान्तप्रिय, शान्ति से अकेली बैठकर पुरुषार्थ किया करती हैं। उन्हें कहाँ किसी की अपेक्षा ही है! कुटुम्ब की भी अपेक्षा नहीं! अन्तर स्वरूप-परिणति में रहती हैं।

✳

(तारीख 19-09-71)

ओहो! बहिन के ज्ञान की निर्मलता की क्या बात कहें! बहुत स्पष्ट ज्ञान!..... बहिन तो जबरदस्त आराधना करती हैं। अकेली बैठी अपना काम करती ही रहती हैं।.....अब तो उन्हें बाहर लाना ही है। उनका जय-जयकार होगा, उनकी बड़ी शानदार ख्याति होगी, जो जियेंगे वे देखेंगे। अलौकिक द्रव्य है, उनकी धारा ही अलग है।

✳

(भाद्र शुक्ल 11, संवत् 2026)

बहिन बोलती तो बहुत कम हैं। ब्रह्मचारिणी बहिनों के बहुत भाग्य हैं। यदि मौन रहें तब भी उनके दर्शन से तो लाभ ही है।..... हमें बहुत

समय से ख्याल था कि बहिन की बहुत शक्ति है।

✳

(मार्गशीर्ष कृष्ण 12, संवत् 2022)

राजुल को पूर्वभव की—गीता की—याद आयी वह तो सामान्य बात है; बहिन को (बहिनश्री को) तो द्रव्य से और भाव से—दोनों प्रकार से स्मरण है। शुद्ध आत्मा के ज्ञान सहित का बहुत ज्ञान है। भावस्मरण अर्थात् निज शुद्ध आत्मा का, और द्रव्यस्मरण अर्थात् यह जीव स्वयं पहले कहाँ था वह—उन दोनों का ज्ञान है। वे तो भगवतीस्वरूप हैं, भगवती बहिन हैं।

✳

श्री कुन्दकुन्द-आचार्यदेव विदेह में गये थे, उसके कौन साक्षी हैं? साक्षी यह चम्पाबेन बैठी हैं ये हैं।

✳

बहिन की गम्भीरता तो देखो! बहिन के बोल (वचनामृत) बहुत गम्भीर हैं। बहिन को तो कहाँ बाहर आना है? मुश्किल से बहिन की पुस्तक बाहर प्रकाशित हुई। बहिन की पुस्तक तो बहुत अच्छी! बहुत ही अच्छी! जिसे अध्यात्म की रुचि हो, उसके लिये तो बहुत ही अच्छी है। ऐसी पुस्तक कब बाहर आती! बहिन का तो विचार नहीं था और बाहर आ गयी। जगत के भाग्य हैं!

✳

(तारीख 26-08-72)

बहिन का आत्मा तो मङ्गलमय है, धर्मरत्न है। हिन्दुस्तान में बहिन

जैसी अजोड़ स्त्रियों में कोई है नहीं, अजोड़ रत्न है। बहिनों के तो महाभाग्य हैं जो ऐसा रत्न मिला है।

✳

(तारीख 17-03-73)

इन बहिन की धारा ही अलग है। इनका वैराग्य, जातिस्मरणज्ञान, इनकी दशा—सब कुछ अलग ही है। इन्हें कहाँ किसी की अपेक्षा ही है! कोई वन्दन करे या न करे, ये कहाँ किसी को देखती ही हैं!

✳

(तारीख 05-08-74)

....बहिन तो चैतन्य-हीरा हैं, उनका हीरों से क्या सम्मान करना! वे तो स्वयं ही हीरा हैं। मैं आहार करने उनके घर गया और कहा कि बहिन! लोगों को बहुत उत्साह है। वजुभाई-हिम्मतभाई (बहिनश्री के भ्राता) वहाँ बैठे थे। बहिन कहने लगीं—'मैं तो आत्मा की साधना करने यहाँ आयी हूँ, यह सब तो बोझ लगता है।' उन्हें बाहर की कुछ अपेक्षा नहीं, जितना करो उतना कम है।

✳

(बहिनश्री को आते देखकर कहा—) बहिन के लिये जगह करो, 'धर्म की शोभा' चली आ रही है। बहिन न तो स्त्री हैं, न पुरुष, वे तो स्वरूप में हैं। भवगतीस्वरूप एक चम्पाबेन ही हैं, उनकी दशा अलौकिक है। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में मौज कर रही हैं।

✳

बहिन की पुस्तक (वचनामृत) आयी बहुत ऊँची! सादी भाषा, मर्म बहुत। अतीन्द्रिय आनन्द में से आयी हुई बात है। अकेला मक्खन भरा है—अकेला माल भरा है। बहुत गम्भीर! थोड़े शब्दों में बहुत गम्भीर! यह तो अमृतधारा की वर्षा है। वचनामृत तो बारह अंग का मक्खन है, सार में सार आ गया है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'—से यह पुस्तक अलौकिक है।* जगत के भाग्य—ऐसी वस्तु बाहर आयी! ऐसे वचनामृत किसे नहीं रुचेंगे? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने देखे वे यह भाव हैं।

✳

यह तो बहिन के अन्तर के वचन हैं न! बहिन की भाषा सादी, किन्तु अन्तर की है। अनुभव विद्वत्ता नहीं चाहता, अन्तर की अनुभूति एवं रुचि चाहता है। यह तो बहिन के शब्द हैं, वे भगवान के शब्द हैं। भाषा भी नयी और भाव भी नये! सादी भाषा में अन्दर रहस्य है। लाखों पुस्तकें छप चुकी हैं, मैंने कभी कहा नहीं था; जब यह (वचनामृत) पुस्तक हाथ में आयी (देखी-पढ़ी) तब रामजीभाई से कहा—भाई! यह पुस्तक एक लाख छपाओ!

✳

(तारीख 06-09-77)

(बहिनश्री के वचनामृत) पुस्तक, सही समय पर बाहर आई। बहिन को कहाँ बाहर आना ही है, किन्तु पुस्तक ने बाहर ला दिया। भाषा सरल है, किन्तु भाव बहुत गम्भीर हैं। मैंने पूरी पुस्तक पढ़ ली है। एक बार

* भाषा की सरलता, प्रारम्भ से पूर्णता तक का सम्पूर्ण विषय 'वचनामृत' में समाहित है, इस दृष्टि से ही यह कथन ग्रहण करना अपेक्षित है। —*अनुवादक*

नहीं, किन्तु पच्चीस बार पढ़ ले फिर भी सन्तोष न हो, ऐसी पुस्तक है। यह दस हजार पुस्तकें छपवाकर सब हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म' के ग्राहकों को भेंट देना — ऐसा मुझे लगा।

✳

(तारीख 16-09-77)

मैं कहता हूँ कि (वचनामृत) पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है—सारे समयसार का सार आ गया है, इसलिए सर्वोत्कृष्ट है। यह पुस्तक अन्य लोगों के हाथ में जायेगी तो हिन्दुस्तान में डंका बजेगा। यह पुस्तक पढ़कर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जाएँगे—ऐसी बात है।.....जगत को लाभ का कारण है। मान छोड़कर एक बार मुनि (भी) पढ़ें तो उनके लाभ का कारण है।

✳

(तारीख 01-10-77)

परिणमन में से निकले हुए शब्द हैं। बहिन को तो निवृत्ति बहुत। निवृत्ति में से आये हुए शब्द हैं। पुस्तक में तो समयसार का सार आ गया है—अनुभव का सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' यह वस्तु तो ऐसी बाहर आ गयी है कि इसे हिन्दुस्तान में सब जगह से प्रगट करना चाहिए।

✳

यह बहिन के वचन हैं, वे अनन्त ज्ञानियों के वचन हैं। इन्द्रों के समक्ष इस समय श्री सीमन्धरदेव जो फरमा रहे हैं, वही यह वाणी है। यह पुस्तक साधारण नहीं है, इसमें तो बहुत कुछ भरा है। भाषा मीठी है, सादी है; भाव गहरे और गम्भीर हैं। दिव्यध्वनि की यह आवाज है। अरे! एक

बार मध्यस्थरूप से इसे पढ़े तो सही! भगवान की कही हुई जो ॐकार ध्वनि है, उसमें से निकला हुआ यह सार बहिन ने कहा है।

✳

(संवत् 1997)

इस काल का योग अनुकूल है; बहिन जैसों का इस काल में अवतार है। अरे! धर्मात्मा गृहस्थ से भेंट होना भी अनन्त काल में कठिन है। भाइयों को इस काल में धर्मात्मा पुरुष मिल जायें, परन्तु इस काल में बहिनों के भी सद्‌भाग्य हैं।

✳

(तारीख 17-09-80)

बहिन से बोला गया अन्तर में से। वहाँ से (विदेहक्षेत्र से) आयी हुई बात है। बहिन वहाँ से आयी हैं।.....बहिन (ब्रह्मचारिणी बहिनों के सामने) बोलीं और लिखा गया, नहीं तो बाहर आता ही कहाँ से? (यह सब) अंकित करना है पत्थर में (संगमरमर के पटियों में)।

✳

यह (वचनामृत) पुस्तक ऐसी आयी है कि चाहे जितने शास्त्र हों, इसमें एक भी बात छूटी नहीं है। थोड़े शब्दों में द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय आदि सब आ गया है। जगत के भाग्य कि ऐसी सादी भाषा में पुस्तक बाहर आ गयी। वीतरागता के भाव का रटन और घोटन है। सारे हिन्दुस्तान में ढिंढ़ोरा पिटेगा। ज्यों ही पुस्तक हाथ में आयी त्यों ही कहा कि एक लाख पुस्तकें छपना चाहिए।

✳

बहिन को जातिस्मरण में आया है—भगवान के पास सुना है कि एक ऐसा सम्यक्त्व होता है कि जो क्षायिक को जोड़ता है—ऐसा 'जोड़णी क्षायिक' होता है। उन्हें रुचता नहीं है, परन्तु अब उसे कुछ-कुछ प्रगट कर रहे हैं। ....बहिन की पुस्तक बहुत अच्छी है, अकेला मक्खन है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' से भी चढ़ जाये ऐसी है। सादी, सरल भाषा में ऊँचा तत्त्व परोसा है।

✳

(तारीख 17-09-80)

यह तो बहिन की भाषा बिल्कुल सादी और अन्तर से बोली गयी है। यह तो जरा बोली और लिखा गया, नहीं तो बाहर आये ही कहाँ से ? अकेले रतन भरे हैं। अन्यमती को भी ऐसा लगे कि ऐसा कहीं भी नहीं है। हीरों का भण्डार है !

✳

(तारीख 19-09-80)

आहाहाहा ! बहिन की योग्यता ! .....यह (बहिन की यह वाणी) तो अंकित होना है पत्थरों में। ढाई लाख रुपये उस दिन (भाद्रपद कृष्णा दूज को) हो गये। (वचनामृत का) मकान बनाया जायेगा।

✳

(राजकोट, सन् 1980)

यह बहिन के वचन हैं। अन्तर आनन्द के अनुभव में से आयी हुई बात है। बहुत जोर है अन्तर का, अप्रतिहत भावना। आत्मा का सम्यग्दर्शन और अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति—उसमें से यह बात आयी है। आनन्द

के स्वाद में मुर्दे की भाँति चलती हैं। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु हैं बहिन! अन्तर की महत्ता के सामने बाहर का कुछ लक्ष्य ही नहीं है। अनुभवी, सम्यक्त्वी, आत्मज्ञानी हैं। आत्मा का अनुभव तो है परन्तु साथ ही असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरणज्ञान है। परन्तु लोगों को स्वीकारना कठिन पड़े।

✳

बहिन (चम्पाबेन) तो जैन की मीराबाई हैं। भान सहित की भक्ति है, अंधी दौड़ नहीं है।

✳

बहिन को तो एक आनन्द... आनन्द... आनन्द! और दिन भर सहज निवृत्ति; बस, और कुछ भी नहीं। कोई वन्दन करे या न करे उसके सामने भी नहीं देखती। किसी के साथ कोई औपचारिक बातचीत नहीं।

✳

(तारीख 29-01-78)

जिसे आनन्द में जमावट हुई है, जो अतीन्द्रिय आनन्द के कौर ले रहा है और जो अतीन्द्रिय आनन्द को गट-गट पी रहा है, ऐसे धर्मी का (साधक का) यह स्वरूप बहिन के मुख से (वचनामृत में) आया है। बिल्कुल सादी भाषा। प्रभु के समवसरण में इस प्रकार बात चलती थी, भाई!.....अरे! यह बात बैठे वह तो निहाल हो जाये ऐसा है। जिनेश्वर देव का जो फरमान है, वह बहिन कह रही हैं।

✳

(तारीख 29-01-78)

वचनामृत के एक-एक बोल में, एक-एक शब्द में निधान भरे हैं।

जिसे तल पकड़ना आता हो, उसे अगाधता लगे स्वभाव की। पर्याय ने प्रभु का संग्रहण किया, पूरा ज्ञान में ले लिया। यह तो सिद्धान्त का दोहन है। जगत के भाग्य कि यह (बहिन की पुस्तक) सही समय पर बाहर आ गयी। थोड़े शब्दों में, सादी भाषा में, मूल तत्त्व को प्रगट किया।

✳

(भाद्रपद कृष्णा दूज)

चम्पाबेन सचमुच अद्वितीय रतन हैं; वे तो अन्तर से बिल्कुल उदास हैं; उन्हें बाहर का यह सब कुछ नहीं रुचता; परन्तु लोगों को तो भक्तिप्रेम से बहुमान करने के भाव आयें न!

✳

(तारीख 07-12-77)

बहिन की पुस्तक के अलावा हम किसी में नहीं पड़े। बहिन की पुस्तक बहुत अच्छी आयी।....बहिन के बोल में आता है न कि — 'बाह्य प्रसिद्धि के प्रसङ्गों से दूर भागने में लाभ है'! बहुत सरस!

✳

बहिन तो महाविदेह से आयी हैं। उनके अनुभव की यह (वचनामृत) वाणी है। हीरों से सम्मान किया तब भी उन्हें कुछ नहीं। बहिन तो (थोड़े भव में) केवलज्ञानी होंगी।

✳

(तारीख 22-01-78)

हम (सीमन्धर) भगवान के पास से सीधे ही आये हैं। इन वचनामृत में भगवान की ध्वनि के मन्त्र भर गये हैं। बहिन की (चम्पाबेन

की) क्या बात करना! वे तो ध्यान में... ध्यान में, बस ध्यान में रहती हैं, आनन्द... आनन्द... आनन्द में हैं। उनका शरीर स्त्री का है, इसलिए ख्याल नहीं आये।

✳

(तारीख 19-09-80)

वचनामृत के एक-एक शब्द में पूरा सार भरा है। विचार को दीर्घरूप से लम्बाकर अन्तर में जा। आहाहा! बहिन की (चम्पाबेन की) कैसी स्थिति है! कहती हैं— 'आत्मा' बोलना सीखे तो यहाँ से (—गुरुदेव के पास से)! गजब है उनकी विनय और नम्रता!

✳

बहिन विदेह से आयी हैं। उन्हें तो असंख्य अरब वर्ष का जातिस्मरणज्ञान है। असंख्य अरब वर्ष की बात, कल की आज दिखे इस प्रकार दिखती है। .....आत्मजाति का ज्ञान होना, वह यथार्थ जातिस्मरण है—अनन्त अनन्त गुणों का नाथ उसका ज्ञान अन्तरमें होना, वह (परमार्थ) जातिस्मरण है।

✳

(तारीख 19-08-80)

बहिन को खबर नहीं कि कोई लिख लेगा। उन्हें बाह्य प्रसिद्धि का जरा भी भाव नहीं है। धर्मरत्न हैं, भगवती हैं, भगवतीस्वरूप माता हैं। (उनके यह वचन) आनन्द में से निकले हैं। भाषा मीठी आ गयी है।

✳

बहिन अभी तक गुप्त थीं। अब ढँका नहीं रहेगा—छिपा नहीं

रहेगा। उनके वचन, वे भगवान की वाणी है, उनके घर का कुछ नहीं है—दिव्यध्वनि है। बहिन तो महाविदेह से आयी हैं। यह वचनामृत लोग पढ़ेंगे, विचार करेंगे, तब ख्याल आयेगा कि यह पुस्तक कैसी है! अकेला मक्खन है।

✳

(तारीख 19-02-78)

(बहिन की) यह वाणी तो आत्मा के अनुभव में-आनन्द में रहते-रहते आ गयी है। हम भगवान के पास पूर्वभव में थे। बहुत ऊँची बात है। इस समय यह बात और कहीं नहीं है। बहिन (चम्पाबेन) तो संसार से मर गयी हैं। अपूर्व बात है, बापू!

✳

बहिन की पुस्तक तो ऐसी बाहर आ गयी है कि मेरे अभिप्राय से तो सबको भेंट देना चाहिए। बहुत सादी-बालक जैसी भाषा; संस्कृत भाषा नहीं। बहुत जोरदार गम्भीर बातें उसमें हैं।

✳

आहाहा! यह ऐसी चीज लोगों के भाग्य से बाहर आ गयी। पुकार किया है इसमें आत्मा का। ऊपर बहिन का फोटो है—बहुत अच्छा; शान्त-शान्त!!

✳

बहिन तो बहिन ही हैं; उनके जैसा दूसरा कोई नहीं है। यहाँ हमें कहाँ कुछ छिपा रखना है? बहिन तो अद्वितीय हैं, अकेली ही हैं। हमारे कुछ खानगी—गुप्त है नहीं।

✳

बहिन की पुस्तक में बहुत संक्षिप्त और माल-माल है। अन्यमतियों को भी पसन्द आये ऐसा है।.....अरे! उसमें तो तेरी महिमा और बड़ाई की बातें हैं। मुनियों की बात कैसी ली है!— 'मुनियों को बाहर आना, वह बोझ लगता है।' यह पुस्तक बाहर आयी, वह बहुत ही अच्छा हुआ। अन्दर थोड़े में बहुत सी बातें हैं।

✳

बहिन तो एक अद्‌भुत रतन पैदा हुई हैं। शक्ति अद्‌भुत है। अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में उन्हें (बाहर की) कुछ अपेक्षा नहीं है। हिन्दुस्तान में उनके जैसा कोई आत्मा नहीं है। यह पुस्तक बाहर आयी, इसलिए कुछ खबर पड़ती है।

✳

चम्पाबेन अर्थात् कौन?! उनका अनुभव, उनका ज्ञान, समता अलौकिक है।.....स्त्री की देह आ गयी है। परन्तु अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की मौज में पड़ी हैं; उसमें से वाणी निकली है।—यह, उनकी वाणी का प्रमाणपना है।

✳

बहिन अलौकिक वस्तु हैं; देहे से भिन्न और राग से भिन्न आत्मा का अनुभव कर रही हैं। उन्हें (बाह्य में) कहीं आनन्द नहीं आता, वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में मौज करती हैं।

✳

(विक्रम संवत् 2030)

(भाद्रपद कृष्णा 14 के दिन पण्डित श्री हिम्मतभाई के घर आहार करने पधारे तब—)

पूज्य गुरुदेवश्री : 'हिम्मतभाई ! देखो न, लोगों को कितने भाव हैं बहिन के प्रति ! दूज के समय कितने ज्यादा लोग आये थे !'

पूज्य बहिनश्री (अति नम्रता से) : 'साहेब ! मुझे तो आत्मा का करना है। यह तो सब उपाधि लगती है।'

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिनबा ! तुम्हें क्या है ? तुम्हें तो सब देखते रहना। मेरे अभिप्राय से तो अभी कम होता है। तुम्हारे लिये तो लोग जितना करें, उतना कम है।

✳

(विक्रम संवत् 2033)

एक स्त्री का शरीर आ गया, नहीं तो (बहिन) दूर एक क्षण नहीं रहे।.....कुछ शब्दों की शैली तो उनके घर की, निवृत्ति की है। भाषा बड़ी सादी, चार कक्षा तक पढ़े हुए लोगों को बैठ जाये ऐसी है।

✳

(तारीख 29-11-77)

बहिन के वचनामृत, यह केवलज्ञान की बारह-खड़ी है। दो-चार बार नहीं किन्तु दस बार पढ़ेंगे तब समझ में आयेगा।

✳

ओहो ! सादी भाषा, मन्त्र हैं मन्त्र। यह तो लाखों शास्त्रों का निचोड़ है। लाखों क्या ? करोड़ों, अनन्त शास्त्रों का आशय स्व-आलम्बन कराना

है। लोग पढ़ेंगे तो आहाहा!..... बाहुबली में भट्टारक ने देखा तो कहने लगे कि 'मुझे दो; ओहो! ऐसी पुस्तक!'

✳

बहिन की (चम्पाबेन की) तो क्या बात करूँ। उनकी निर्मल दृष्टि और निर्विकल्प स्वात्मानुभूति इस काल में अद्वितीय हैं। वे तो अन्तर से ही उदास-उदास हैं। उनके सम्बन्ध में विशेष क्या कहूँ? हमारे मन तो वे भारत का धर्मरतन, जगदम्बा, चैतन्यरत्न, धर्ममूर्ति हैं, हिन्दुस्तान का चमकता सितारा हैं।

✳

(जामनगर, अप्रैल, 1979)

बहिन को असंख्य अरबों वर्ष का ज्ञान है—9 भव का ज्ञान है (—4 भूत के, 4 भविष्य के)। बहिन तो भगवान के पास से आयी हैं। अनुभव में से यह बात आयी है। उदयभाव से तो मर गयी हैं, आनन्द से जी रही हैं। परमात्मा के पास से आयी हैं। साक्षात् परमात्मा तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ हम साथ थे। क्या कहें प्रभु! सीमन्धर परमात्मा के पास कई बार जाते थे। उन भगवान की यह वाणी है। बहिन तो आनन्दसागर में.....

✳

यह कथा-कहानी नहीं, भागवत कथा है। परमात्मा की वाणी के इशारे हैं। उनका अनुभव करे, उसे खबर पड़े। .....बहिन तो भगवती माता हैं।

✳

– ७ –

देव-गुरुस्तुति

इस विभाग में सोनगढ़ में और अन्य स्थानों पर पूज्य भगवती माता बहिनश्री चम्पाबेन के मार्गदर्शन तले हुए पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि प्रसंगों पर परम देवाधिदेव परम पूज्य श्री सीमन्धर भगवान के, महावीर भगवान के, समवसरण के, मानस्तम्भ के, कुन्दकुन्दाचार्यदेव के और नन्दीश्वरादि के (स्तुति काव्य) तथा पूज्य गुरुदेवश्री के साथ हुई तीर्थ यात्राओं के समय और गुरु जन्म-जयन्ती, अपने घर पर पूज्य गुरुदेवश्री के (आहार करने के लिये) मंगल पदार्पण इत्यादि प्रसंग में अतिशय भाववाही स्तुति-काव्य पूज्य बहिनश्री द्वारा बन जाते थे। वे सब काव्य यहाँ स्थल संकोच के कारण नहीं दिया जा सकते होने से नमूने के रूप में थोड़े से दिये गये हैं, जिससे परम महिमावन्त पूज्य भगवती माता को साधनामय परिणति के साथ वर्तती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र और तीर्थों के प्रति अतिशय भक्ति और अर्पणता के दर्शन होते हैं, तथा उनकी अद्‌भुत कवित्त्व शक्ति का कुछ अंश में ख्याल आता है।

इस विभाग के भक्ति काव्य सह अवलोकन से 'अन्तर में ज्ञायक को साथ रखना और बाहर में देव-गुरु को साथ रखना'—ऐसे पूज्य बहिनश्री के हितोपदेश को अपने जीवन में चरितार्थ करने की मुमुक्षु जीवों को अवश्य प्रेरणा प्राप्त होगी।

सीमंधरा! नमुं तने शिर नामी नामी।

जिनेन्द्र भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के
स्वानुभवमुद्रित और भक्तिरसप्लावित हृदय में से प्रवाहित कितनी ही

☆ देव-गुरुस्तुति ☆

स्वर्णमयी वधामणां

(राग - आवो आवो सीमंधर जिनराजजी रे)

स्वर्णपुरीमां स्वर्णमयी वधामणां रे, (२)
सीमंधर भगवंत (आज) पधार्या मंदिरे।
आवो पधारो विदेही जिनराजजी रे,
-सीमंधर जिनराजजी रे,
मणिरत्ने वधावुं त्रिभुवननाथने। ....स्वर्ण। १

विदेहक्षेत्रे सीमंधरनाथ बिराजता रे, (२)
आज पधार्या स्वर्णपुरीना मंदिरे;
आज पधार्या भरतभूमिना आंगणे;
देवदेवेन्द्रों आवे जिनवर पूजवा रे, (२)
विधविध रत्ने वधावे जिनवरदेवने ....स्वर्ण। २

पंचकल्याणक स्वर्णपुरीमां शोभतां रे, (२)
दैवी दृश्यो नजरे निहाल्यां नाथनां;
पुनित प्रसंगो महिमावंत भगवंतना;
आकाशे बहु देवदुंदुभि वागतां रे, (२)

गंधर्वोनां गीत मधुरां गाजतां;
कुमकुम-केसर स्वर्णपुरे वरसी रह्यां रे, (२)
आकाशे बहु रंग अनेरा शोभतां.... स्वर्ण। ३

श्रेयांसराया-सत्यमाताना नंद छो रे, (२)
पुंडरपुरमां जन्म प्रभुना शोभता;
समवसरणमां विदेहीनाथ बिराजता रे, (२)
दिव्यध्वनिना अमृतरस वरसी रह्या। ....स्वर्ण। ४

अशोक तरुवर उन्नत अति सोहामणां रे, (२)
भव्य हृदयने आनंदरस उपजावतां;
जिनजी-प्रतापे आनंदरस वरसी रह्या;
जिनजी मारा रत्नसिंहासन शोभता रे, (२)
दिव्य कमळमां अंतरीक्ष बिराजता। ....स्वर्ण। ५

जिनजी मारा वीतरागी पद पामिया रे, (२)
अनंतगुणोना बाग अहो! खीली रह्या;
जिनजी मारा केवळज्ञाने शोभता रे, (२)
स्वपरप्रकाशक ज्ञान अहो! झळकी रह्यां। ....स्वर्ण। ६

दिव्य गुणाकार देव पधार्या आंगणे रे, (२)
दिव्य रविनां तेज अहो! प्रसरी रह्यां;
जिनमुद्रामां उपशमरस वरसी रह्या रे, (२)
अनुपम आनंदपूर्ण स्वरूपने पामिया। ...स्वर्ण। ७

त्रण भुवनना नाथ पधार्या आंगणे रे, (२)
विश्ववंद्य भगवंत अमारे मंदिरे;
इन्द्र-नरेन्द्रो जिनचरणोने पूजता रे, (२)
त्रण भुवनमां जिनवरगुण गाजी रह्या;
-जिनेन्द्रभवने जिनस्तवनो गुंजी रह्या। ...स्वर्ण। ८

पंचम काळे जिनवरदर्शन दोह्यलां रे, (२)
विचरंता भगवंत पधार्या आंगणे;
भरतभूमिमां विरह हता वीतरागना रे, (२)
सौराष्ट्रदेशे विरह हता वीतरागना रे, (२)
आज पधार्या जिनवर मारे मंदिरे। ....स्वर्ण। ९

जिनवर-प्रतिमा जिनवर सरखां जाणीअे रे, (२)
सद्भक्तोने भवथी पार उतारतां;
आश्चर्यकारी मुद्रा प्रभुनी शोभती रे, (२)
भक्तजनोने आश्चर्य उपजावती;
कहानगुरुने आश्चर्य उपजावती। ....स्वर्ण। १०

अनिमिष नयने निरखुं जिनवरदेवने रे, (२)
जिनदर्शनमां अंतरियां थंभी रह्यां;
निरख्या करुं हुं निशदिन श्री जिननाथने रे, (२)
जिनदर्शनमां मनडां अम लागी रह्यां। ...स्वर्ण। ११

कई विध वंदु, कई विध पूजुं नाथने रे, (२)
तृप्ति न थाये, अंतरियां उलसी रह्यां;

विधविधनां पूजन रचावो आंगणे रे, (२)
माणेक-मोतीनां मंडल मंडावो मंदिरे। ....स्वर्ण। १२

रत्नचिंतामणि नाथ पधार्या आंगणे रे, (२)
जिनजी मारा सर्व सिद्धि दातार छे;
हीरा-मोतीना स्वस्तिक रचावो आंगणे रे, (२)
त्रिभुवनतारक देव पधार्या आंगणे। ...स्वर्ण। १३

महाभाग्येथी जिनवरदर्शन पामिया रे, (२)
प्रभुजी मारा! नित्ये दर्शन आपजो;
जिनजी मारा! नित्ये सेवा आपजो रे, (२)
अम सेवकनी विनतडी स्वीकारजो;
अम सेवकने नित्ये शरणे राखजो। ....स्वर्ण। १४

गुरुजी-प्रतापे जिनवरदर्शन पामिया रे, (२)
गुरुवरजीनां कृपामृत वरसी रह्यां;
गुरुजी मारा! चैतन्यरस वरसावजो रे, (२)
अम सेवकने भवोदधितारणहार छो;
देव, गुरु ने शास्त्र वसो मनमंदिरे रे, (२)
अम सेवकने शिवमुखना दातार छो। ....स्वर्ण। १५

श्री वीरजिनेन्द्र-स्तवन

मारा मंदिरियामां त्रिशलानंद पधारिया रे,
मारा हैडामांही हर्ष अति उभराय,
रुडा श्रुतमंदिरिये वीरप्रभुजी पधारिया रे। ...मारा।१

भारतना तीरथपति चोवीशमा जिनराय;
भरते पधार्या भाग्यश्री, त्रण भुवनना नाथ।
जेने नीरखतां ज टल्या संशय मुनिराजना रे,
जेणे बाळवये फणीधर सह खेल्या खेल,
अेसा सन्मतिदेवा आज पधार्या आंगणे रे;
-अेवा महावीरदेवा आज पधार्या आंगणे रे। ...मारा।२

उग्र तपस्या आदरी, वनमांही जिनराज;
उपसर्गे निश्चल रही, साध्यां आत्मनिधान।
वंदो वीरप्रभु अतिवीरप्रभु महावीरने रे,
जेनी वीरताना देवेन्द्रो गुण गाय,
अेवा वर्धमान जिनेन्द्र पधार्या आंगणे रे;
-अेवा त्रिलोकी भगवान पधार्या आंगणे रे। ...मारा।३

केवळ ज्योति झळहळे, दूटे मधुरा नाद;
अंतर-बाहिर लक्ष्मीथी, सुशोभित जिनराज।
आजे वीरप्रभुने रत्नोथी वधावीअे रे;
प्रभुने पूजवाने आवे सुरनां वृंद,
अेवा विश्वदिवाकर देव पधार्या आंगणे रे। ...मारा।४

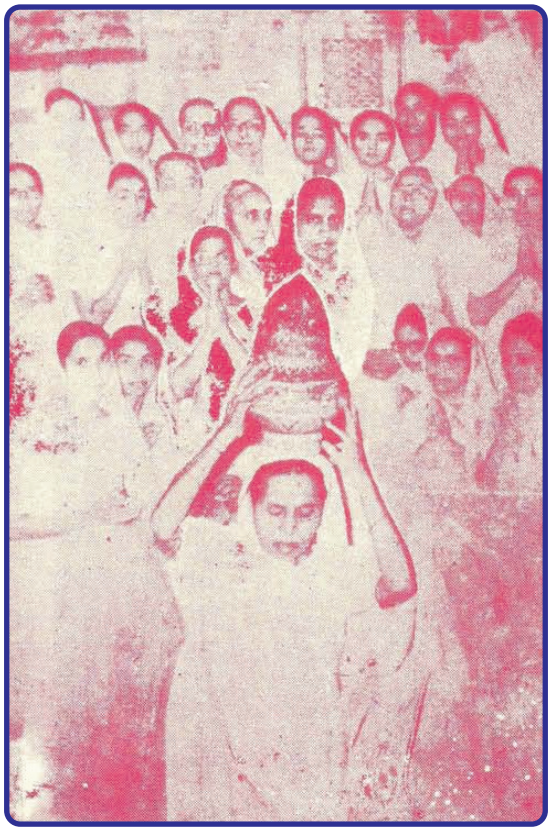

(मंगल प्रतिष्ठा प्रसंग पर)

आवो वीरजिनेन्द्र पधारो मारे मंदिरे रे,
पंच-परमश्रुत-अक्षतरत्न जड्यां मुझ मंदिरे रे।
जेमां गुंजी रह्या छे मुक्ति केरा मार्ग,
(जेमां गुंजी रह्या छे ॐध्वनिना नाद,)
अेवा परमागम-मंदिर स्थपायां आंगणे रे;
पावन शोभी रह्यां जयां कुंदचरण अभिराम,
अेवा महिमायुत श्रुतमंदिर मारे आंगणे रे। ...मारा।५

भरते वीतप्रभुनुं शासन जयवंत शोभतुं रे,
प्रगट्या कुंदकुंद-अमृत-पद्मादिक गुरु कहान,
जेणे वीरशासनने अनेरा रंग चडाविया रे। ...मारा।६

कुंदामृत शास्त्रो रच्यां, अणमूलां अे रत्न;
गुरुकहाने समजावियां, खोल्यां ऊंडा मर्म।
कहानगुरुअे आखा भारतने डोलावियुं रे,
गुरुने अंतर उलस्यां श्रुत तणां निधान,
जेना वदनकमणथी अमृतरस वरसी रह्या रे;
-अेवा संतजनोनी महिमा केम कथाय,
नित्ये देव-गुरु ने शास्त्र वसो मनमंदिरे रे। ...मारा।७

☆☆☆

☆ मंगळमालण शोभी रही रे ☆

स्वर्णपुरीमां स्वर्णरवि आज,
पधार्या ऋषभ जिणंद रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

नाभिराजाना लाडीला सुत अहो!
मरुदेवीमाताना नंद रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे। ....स्वर्ण।

सुरतरु सुरमणि जिनजी पधार्या,
त्रण भुवनना नाथ रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

❊ देव-गुरुस्तुति ❊

रत्नचिंतामणि देव पधार्या,
मनचिंतित-दातार रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे। ....स्वर्ण।

जुगलयुगान्ते प्रथम तीर्थंकर,
थया ऋषभ-अवतार रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

दिव्यध्वनिना अमृत वरस्यां,
मुक्तिना फाल्या फाल रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे। ....स्वर्ण।

गणधर मुनिवर श्रावक श्राविका,
फाल्या फाल मनहार रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

देव-देवेन्द्र आज प्रभुजी ने पूजे रे,
रत्ने वधावे जिनराज रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे। ....स्वर्ण।

अनंत आनंद-ज्ञानादि उछण्यां,
आश्चर्यकारी जगनाथ रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

मंगळ पदार्पण स्वर्णपुरीमां
मंगण वर्षा थाय रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे। ....स्वर्ण।

आवो पधारो प्रभु! अम मंदिरिये,
हैडां ऊछणी जाय रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

अनंत चतुष्टयवंता जिणंदजी,
गुणरत्नाकर नाथ रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे। ...स्वर्ण।

कई विध वंदुं, कई विध पूजुं,
आंगणे पधार्या जिनराज रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

गुरुजी-प्रतापे प्रभुजी पधार्या,
जयजयकार गवाय रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे।

निशदिन होजो देव-गुरुजीनी सेवा,
सेवकनी अरदास रे,
मंगणमाळ शोभी रही रे। ...स्वर्ण।

☆☆☆

जिनेन्द्रवृंद पधारिया रे

(राग - सुंदर स्वर्णपुरीमां)

मारा जिनालयमां जिनेन्द्रवृंद पधारिया रे;
मारा अंतरियामां हर्ष अति ऊभराय,
सुरनर आवो आवो जिन-चरणो ने पूजवा रे।

(साखी)

नंदीश्वर बिराजता, रत्नमयी जिनराज;
मेरु पर सोही रह्यां, जिनप्रतिमा मनहार।
आवो पधारो प्रभुजी सेवकना जिनमंदिरे रे;
हुं तो कई विध वंदुं, कई विध पूजुं नाथ,
मारे आंगणे आजे शाश्वता जिनेश्वरा रे। ...मारा।

(साखी)

धनु शत पंच बिराजता, रत्नमयी जिनराज;
जिन साक्षात् समा दीसे, स्वयंसिद्ध भगवान।
जिनवर महिमानां गुणगान त्रिजगमां गाजतां रे;
प्रभुना महिमाना गुण मुखथी केम कथाय,
देवदेवेन्द्रो जिनप्रतिमानां चरणो पूजता रे। ...मारा।

(साखी)

जिनप्रतिमा अद्‌भुत अहो! ध्यानमयी मनहार;
उपशमरस वरसी रह्या, मंगलमूर्ति महान।
प्रभुनी भक्ति वडे भव्यो पामे भव-अंतने रे;
जेने अंतर निरख्ये आतमने निरखाय,
अेवां मणिमय बिंब पधार्यां मारे आंगणे रे।
आवो आवो प्रभुजी आजे मारे मंदिरे रे,
दैवी गुणगण-धारक देव पधार्या आंगणे रे। ...मारा।

(साखी)

ऋषभ जिणंद पधारिया, महापद्म भगवंत;
जिनवर भावि विदेहना, नंदी-मेरु जिणंद।

अंतातीत गुणोना नाथ पधार्या आंगणे रे;
हुं तो जयां जोऊं तयां निरखुं छुं जिनदेव,
विधविध अर्घोथी वधावुं जिनवरदेवने रे। ...मारा।

मारा हैडामांही हर्ष अति उभराय,
देव-गुरुनो महिमा नित्य वसो मनमंदिरे रे।
गुरुजीना गुणमहिमानां गीतो केम गवाय,
गुरुजी कहान प्रतापे जिनवरवृंद पधारिया रे;
अगणित गुणनिधिना दातार पधार्यां आंगणे रे। ...मारा।

☆☆☆

त्रिभुवनतारकने रत्ने वधावो रे

(राग : विदेहवासी कहानगुरु भरते पधार्या रे)

स्वर्णपुरे भावी भगवंत पधार्या रे,
त्रिभुवनतीरथ तारणहारा रे;
आवो रे सौ भक्तो मंगळगीत गाओ रे,
त्रिभुवनतारकने रत्ने वधावो रे।

(साखी)

आवो! पधारो! मारा जिनवरदेवा,
निशदिन होजो जिनचरणोनी सेवा;
दरशन देखी अति हर्ष ऊभराया रे,
सुवर्णपुरीमां आजे (आनंद) मंगळ छवायां रे। ...स्वर्ण।

(साखी)

आनंदसागरमां जिनजी बिराज्या,
दिव्य महिमाधारी प्रभुजी अमारा;
दिव्यध्वनिनी अहो! वर्षा वरसावो रे,
अम भक्तोनी प्रभु! तृषा छिपावो रे। ...स्वर्ण।

(साखी)

गर्भकल्याणके रत्नोनी वर्षा,
सुरपति स्वर्गे जिनेन्द्रगुण गाता;
जन्मकल्याणके (इन्द्रो) मेरुअे लई चाल्या रे,
सहस्त्र नयने इन्द्रे प्रभुने निहाल्या रे,
जिनजन्म-महिमा देवेन्द्रो गाता रे। ...स्वर्ण।

(साखी)

लोकान्तिक देव दीक्षा-कल्याणक ऊजवे,
स्वयंबुद्ध प्रभुजीने प्रतिबोध आपे;
ज्ञानी-ध्यानी प्रभु मुनीश्वरदेवा रे,
वनवासी आत्मध्यानी जिनेश्वरदेवा रे। ...स्वर्ण।

(साखी)

ज्ञानकल्याणके (इन्द्र) समोसर्ण रचावे,
दिव्यध्वनिना प्रभु घोघ वरसावे,
सुर-नर-मुनिवर आश्चर्य पामे रे;
दिव्य ध्वनिनां अमृत उर झीले रे;
केवळज्ञानी प्रभु स्वरूपनिवासी रे,
आनंदादिक गुण पूर्ण विकासी रे;
निरख्या करूं नाथ तृप्ति न पामुं रे,

गाया करूँ गुण वारी वारी जाऊं रे,
वंदु, स्तवुं, पूजुं, वारी वारी जाऊं रे। ...स्वर्णे।

(साखी)

पृथ्वी सरीखां प्रभु! पत्र रचावुं,
समग्र समुद्रोनी शाही बनावुं,
वृक्षसमूहोनी कलमो करावुं;
प्रभुजीनां गूणगीतो पूरां न थाये रे,
जिनवरमहिमा त्रिजगमांही गाजे रे,
इन्द्रों नरेन्द्रो प्रभुचरणो ने पूजे रे। ...स्वर्णे।

(साखी)

शासननायक वीरनाथने वंदुं,
सीमंधरप्रभु विद्यमानने प्रणमुं;
जिनवर त्रिकाळिक लळी लळी नमुं रे,
देव-शास्त्र-गुरुजी ने हृदये पधरावुं रे। ...स्वर्ण।

(साखी)

स्वर्गेथी कहानगुरु स्वर्णे पधारो,
अम भक्तोनी भावना पुरावो;
(अम सेवकनी आशा पुरावो;)
स्वर्गेथी वरसावो कृपामृतवर्षा रे,
नित होजो देव-गुरु-चरणोनी सेवा रे। ...स्वर्ण।

श्री महापद्मजिन-स्तवन

(राग - आवो, आवो, सीमंधरनाथ! अम घेर आवो रे!)

मंगळ पगले महापद्मनाथ पधार्या रे,
अहो! भावीना भगवंत स्वर्णे बिराज्या रे।
आवो आवोने सुरनरवृंद स्वर्णे आवो रे,
आगामी आदि जिणंद रत्ने वधावो रे। ...मंगण।

गगने गंधर्वो गाय, दुंदुभि वागे रे,
स्तवनो मधुरां रेलाय, जिनगुण गाजे रे।
वीरपरिषदे राजेन्द्र श्रेणिक राजे रे,
तीरथपति-पद बंधाय, महिमा गाजे रे। ...मंगण।

पंचकल्याणको ऊजवाय जंबू-भरते रे,
सुरगण नभमां ऊभराय, जय जय वर्ते रे।
जिन जन्म्ये होय सुकाल, मंगण व्यापे रे,
(प्रभभ जन्म्ये उन्नतिकाण, आनंद व्यापे रे)
बहु फाले घरमना फाल 'पद्म' प्रतापे रे। ...मंगण।

भावी चोवीशीमांह्य प्रथम जिणंदा रे,
इन्द्रो पूजे तुज पाय, विश्वदिणंदा रे।
निज आनंदे रमनार, आत्मविहारी रे,
गुणव्यक्ति सकल धरनार, महिमा भारी रे। ...मंगण।

कई विध पूजुं गुणधाम, कई विध वंदुं रे,
मुझ आतमना आराम, नयन भरी निरखुं रे।

तरु कल्प पधार्या आज, वांछितदाता रे
शिवसुखदायक जिनराज, भवदु:खत्राता रे। ...मंगण।

गुरुराज तणो उपकार भरते गाजे रे,
स्वानुभूतिभर्यो रणकार, चेतन जागे रे।
गुरुप्रतापथी जिनवृंद स्वर्णे पधार्या रे,
गुरु पधारतां सुख थाय, भाव अमारा रे।
(–गुरु! पधारो स्वर्ण मोझार–मंगलकारा रे।) ...मंगण।

गणनातीत गुरु–उपकार मुज अणु–अणुअे रे,
शब्दोथी केम कथाय, नमुं नमुं भावे रे,
देव–गुरु तणो वसवाट सदा मुज दिलमां रे,
शिवपद तक रहुं तुम दास–भावुं उरमां रे। ...मंगण।

☆☆☆

आजे गुरुजी मारा स्वर्णे पधार्या रे

(राग : विदेहवासी कहानगुरु भरते पधार्या रे)

आज सोनेरी मंगण दिन ऊग्यो रे,
आवो रे सौ भक्तो गुरुगुण गाओ रे,
आजे गुरुजी मारा स्वर्णे पधार्या रे,
सुवर्णपुरीमां आजे आनंद छवाया रे। ...आजे। १

यात्रा करीने आजे गुरुजी पधार्यां;
स्वर्णपुरीनां संत स्वर्णे बिराज्या (पधार्यां)
स्वर्णपुरीमां आजे फुलडां पथरावो रे,

(अंतरमां आनंदना दीवडा प्रगटावो रे,)
घर-घरमां आजे दीवाडा प्रगटावो रे। ...आजे। २

आवो पधारो गुरुजी अम आंगणिये;
आवो बिराजो गुरुजी अम मंदिरिये,
माणेक-मोतीना साथिया पुरावुं रे,
विधविध रत्नोथी गुरुने वधावुं रे। ...आजे। ३

भारत भूमिमां गुरुजी पधार्यां;
नगर नगरमां गुरजी पधार्यां,
तारणहारी वाणीथी हिंद आखुं डोले रे,
गुरुजीनो महिमा भारतमां गाजे रे।
(भव्य जीवोनो आतम जागे रे।) ...आजे। ४

सम्मेद शिखरनी यात्रा करीने,
शाश्वत धामनी वंदना करीने,
भारतमां धर्मध्वज लहराव्या रे,
पगले पगले तुज आनंद वरस्या रे। ...आजे। ५

सीमंधरसभाना राजपुत्र विदेहे;
सत्धर्म-प्रवर्तक संत भरते,
परम-प्रतापवंता गुरुजी पधार्या रे,
(भवभवना प्रतापशाली गुरुजी पधार्या रे)
चैतन्यधर्मना आंबा अहो! रोप्या रे,
नगर-नगरमां फाल रुडा फाल्या रे। ...आजे। ६

नगरे नगरे जिन-मंदिर स्थपायां;
गुरुजी-प्रतापे कल्याणक उजवायां,
अनुपम वाणीनां अमृत वरस्यां रे;
भव्य जीवोनां अंतर उजाल्यां रे।
(सत्य घरमना पंथ प्रकाश्या रे।) ...आजे। ७

नभमंडळमांथी पुष्पोनी वर्षा;
आकाशे गंधर्वो गुरुगुण गाता।
अनुपम (अगणित) गुणवंता गुरुजी अमारा रे,
सातिशय श्रुतधारी, तारणहारा रे,
चैतन्य-चिंतामणि चिंति-दातार रे। ...आजे। ८

सुरो मधुरा गुरुवाणीना गाजे;
सुवर्णपुरे नित्य चिद्रस वरसे।
ज्ञायकदेवनो पंथ प्रकाशे रे,
शास्त्रोना ऊंडा रहस्यो उकेले रे। ...आजे। ९

मंगलमूरति गुरुजी पधार्यां;
अम आंगणिये गुरुजी बिराज्या,
महाभाग्ये मळिया भवहरनारा रे,
अहोभाग्ये मळिया आनंददातारा रे,
पंचमकाले पधार्या गुरुदेवा रे,
नित्ये होजो गुरुचरणोनी सेवा रे। ...आजे। १०

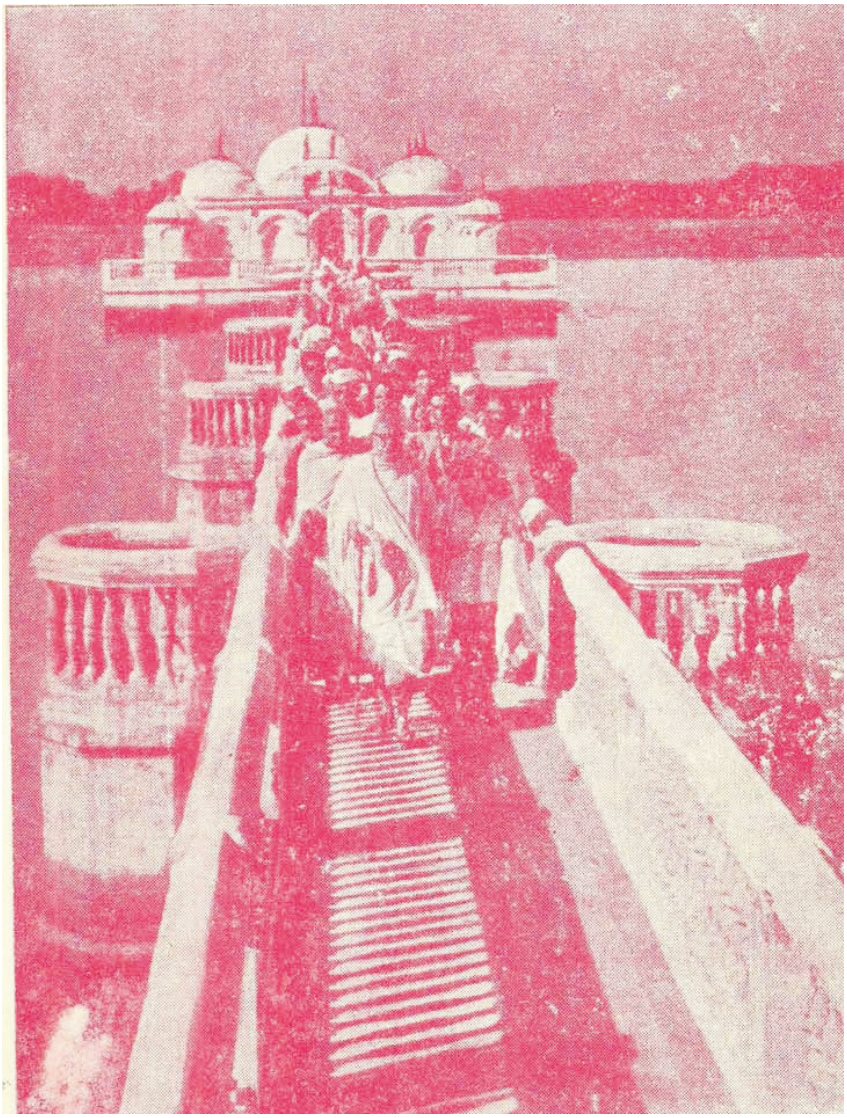

यात्रा अपूर्व गुरु साथमां रे लाल

गुरुजी जोड जगे नहि जडे

सोनेरी सूर्य स्वर्णपुरमां रे लाल,
पधार्या कहानगुरुदेव जो,
गुरुजीनी जोड जगे नहि जडे रे लाल।१

गुणो गहन गुरुदेवना रे लाल,
अद्वितीय अवतार जो।गुरुजीनी।२

दिव्य महिमा गुरुदेवनी रे लाल,
दिव्यता-भरेली गुरुवाण जो।गुरुजीनी।३

दर्शनथी आत्मरुचि जागती रे लाल,
वाणीथी आतम पलटाय जो।गुरुजीनी।४

गुरुजीनी महिमा हुं शुं कथुं रे लाल,
अपूर्व श्रुत-अवतार जो।गुरुजीनी।५

भारतखंडमां विचर्या रे लाल,
यात्रा करी अद्‌भुत जो।गुरुजीनी।६

पावन यात्राअे गुरु संचर्या रे लाल,
पावन थयो हिन्द देश जो।गुरुजीनी।७

पुर पुर गुरुजी पधारिया रे लाल,
वाणीमां चित्त-चमत्कार जो।गुरुजीनी।
वाणी चैतन्यरसधार जो।गुरुजीनी।८

भव्यवृन्द गुरुने वधावतां रे लाल,
पगले पगले पुष्पमेघ जो।गुरुजीनी।९

ससंघ गुरुजी संचर्या रे लाल,
दासने देखाड्या तीर्थधाम जो। गुरुजीनी। १०

शाश्वतधामनां दर्शन कर्यां रे लाल,
सम्मेदशिखरनां दर्शन कर्यां रे लाल,
भावे पधार्यां तीर्थधाम जो। गुरुजीनी। ११

सिद्धप्रभुनां दर्शन कर्यां रे लाल,
पामवाने सिद्धस्वरूप जो। गुरुजीनी। १२

तीर्थंकरदेवनां दर्शन कर्यां रे लाल,
त्रण भुवनना नाथ जो। गुरुजीनी।
-साक्षात् भेट्या भगवान जो। गुरुजीनी। १३

राजगृही समोसरण सोहता रे लाल,
वीरध्वनिना छूट्या नाद जो। गुरुजीनी। १४

पावापुरी रळियामणी रे लाल,
वीर प्रभुना सिद्धिधाम जो। गुरुजीनी। १५

बहु बहु तीरथ दर्शन कर्यां रे लाल,
नगरे नगरे वधाई जो। गुरुजीनी। १६

ज्ञायकदेव समजावियारे लाल,
बोल्या अपूर्व शिवपंथ जो। गुरुजीनी। १७

आंखा रोप्या सत्धर्मना रे लाल,
फाल्या भरतमां फाल जो। गुरुजीनी। १८

बहु बहु तीरथ
दर्शन कर्यां
रे लाल

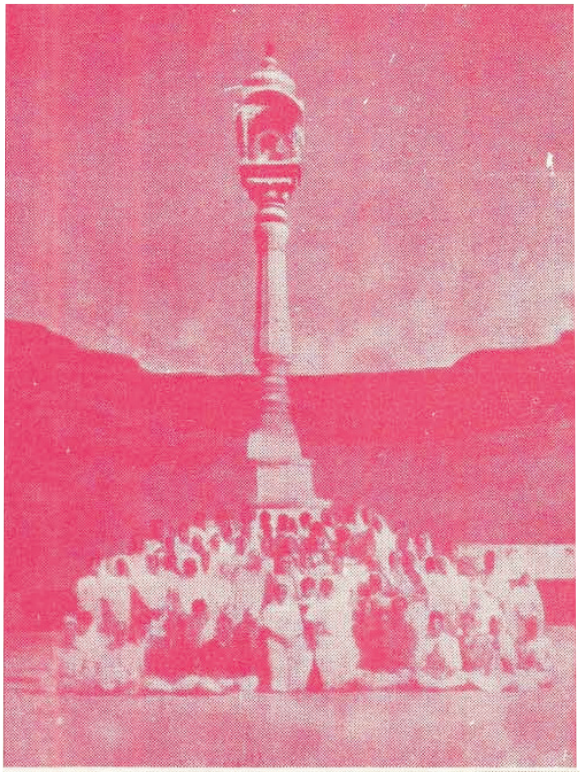

यात्रा करी
अद्‌भुत जो।

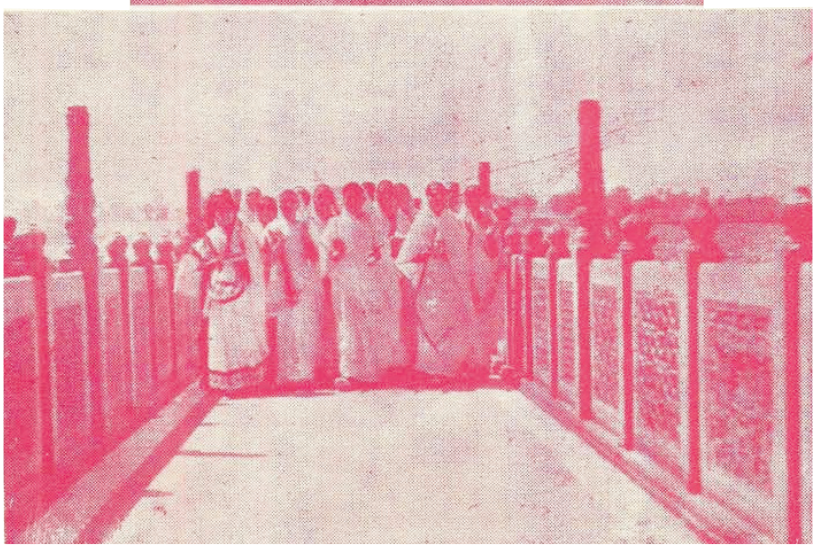

जय विजय गुरुदेवनो लाल,
जीवोनां जूथ ऊभराय जो। गुरुजीनी। १९

यात्रा अपूर्व गुरु साथमां रे लाल,
मंगल प्रतिष्ठा अनेक जो। गुरुजीनी। २०

आदर्श कार्य गुरुदेवनां रे लाल,
परम प्रतापी गुरुदेव जो। गुरुजीनी। २१

गुरुजी पधार्या आज स्वर्णमां रे लाल,
पावन कर्युं स्वर्णधाम जो। गुरुजीनी। २२

विधविध स्वागत गुरुदेवनां रे लाल,
रत्ने वधावुं गुरुराज जो। गुरुजीनी।
(हैडे आनंद ऊभराय जो।) गुरुजीनी। २३

मीठा स्मरणो यात्रा तणां रे लाल,
मीठां जीवनना प्रसंग जो। गुरुजीनी। २४

नित्ये गुरुनी चरणसेवना रे लाल,
नित्य होजो गुरुजीनो साथ जो। गुरुजीनी। २५

धन्य मंगण दिन ऊगियो रे लाल,
स्वर्णे पधार्या गुरुदेव जो। गुरुजीनी। २६

विदेहवासी कहानगुरु

विदेहवासी कहानगुरु भरते पधार्या रे,
सुवर्णपुरीमां नित्ये चैतन्यरस वरस्या रे;
उजमबाना नंद अहो! आंगणे पधार्यां रे;
अम अंतरियामां हर्ष ऊभराया रे।
आवो पधारो मारा सद्गुरुदेवा;
शी शी करूं तुझ चरणोनी सेवा।
विधविध रत्नोना थाण भरावुं रे,
विधविध भक्तिथी गुरुने वधावुं रे। ...विदेह। १

दिव्य अचरजकारी गुरु अहो! जाग्या;
प्रभावशाणी संत अजोड पधार्या।
वाणीनी बंसरीथी ब्रह्मांड डोले रे,
गुरु-गुणगीतो गगनमांही गाजे रे। ...विदेह। २

श्रुतावतारी अहो! गुरुजी अमारा;
अगणित जीवोनां अंतर उजाण्यां।
सत्य धरमना आंबा इडा रोप्या रे,
सातिशय गुणधारी गुरु गुणवंता रे। ...विदेह। ३

कामधेनु कल्पवृक्ष अहो! फळियां;
भावि तणा भगवंत मुज मळिया।
अनुपम धर्मधोरी गुरु भगवंता रे,
निशदिन होजो तुझ चरणोनी सेवा रे। ...विदेह। ४

कहानगुरु-स्तुति

(राग : धर्मध्वज फरके छे)

कहानगुरु बिराजो मनमंदिरिये;
आवो आवो पधारो अम आंगणिये;
कल्पवृक्ष फल्यां अम आंगणिये।
शी शी करूं तुज पूजना, शी शी करूं तुज वंदना;
गुरुजी पधार्या आंगणे, अम हृदय उल्लसित थई रह्यां।
पंचम काले पधार्या गुरु तारणहार;
स्वर्णे बिराज्या सत्य-प्रकाशनहार। ...कहानगुरु।१
दिव्य तारूं द्रव्य छे ने दिव्य तारूं ज्ञान छे;
दिव्य तारी वाणी छे ने अम जीवन-आधार छे।
चैतन्यदेव प्रकाश्या गुरु-अंतरमां;
अमृतधारा वरसी सारा भारतमां। कहानगुरु।२
सूर्य-चंद्रो गगनमां गुणगान तुज करता अहो!
महिमाभर्या गुरुदेव छो, शासन तणा शणगार छो।
नित्ये शुद्धात्मदेव-आराधनहार;
ज्ञायकदेवना साचा स्थापनहार। ...कहानगुरु।३
श्रुत तणा अवतार छो, भारत तणा भगवंत छो;
अध्यात्ममूर्ति देव छो, ने जगत-तारणहार छो।
सूक्ष्म तत्त्वना भावो जाणनहार;
मुक्तिपंथना साचा प्रकाशनहार। ...कहानगुरु।४
भरी रत्नना थाळे वधावुं भावथी गुरुराजने;
भगवंत भाविना पधार्या सेवक, तारणहार छे।
कृपानाथने अंतरनी अरदास,
गुरुचरणोमां नित्ये होजो निवास। ...कहानगुरु।५

गुरुदेव घर-आंगणे पधारतां गवायेल

भक्तिगीत

(राग : विदेही जिणंदजी सोहामणा रे लाल)

*गुरुराज पधार्या अम आंगणे रे लाल,
भक्ति करूँ हुं तारी भावथी रे लाल,
रत्ने वधावुं गुरुदेवने रे लाल।
(-मोतीडे वधावुं गुरुदेवने रे लाल।) १।

अमृत भर्यां तुझ वाणीअे रे ला,
चैतन्यरस वरसी रह्या रे लाल। ...रत्ने। २

भरते अजोड गुरुदेव छे रे लाल,
महिमा तणा भंडार छे रे लाल। ...रत्ने। ३

श्रुत तणा अवतार छे रे लाल,
सरस्वती-मात मुखे सोहता रे लाल। ...रत्ने। ४

दिव्यता भरेलुं तुज द्रव्य छे रे ला,
भावी तणा भगवंत छे रे लाल। ...रत्ने। ५

तुज वाणीमां आश्चर्य अपार छे रे ला,
दैवी गुणोथी गुरु शोभता रे लाल। ...रत्ने। ६

---

* परमोपकारी परम-तारणहार परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी पूज्य बहेनश्री चंपाबेन के घर-आंगन में पधारने पर (पूज्य बहेनश्री द्वारा) गवाये हुए भक्तिगीतों में से गीत। (कितने ही बार तहेवा, यात्रास्थलों में, जन्मदिवस-ऐसे अनेक बार पूज्य सद्गुरुदेव बहेनश्री के घर-आंगन में आहार के लिए पधारते थे।)

चंद्र-सूरज पाय पूजता रे लाल,
सर्व वस्तु चरणे नमे रे लाल। ...रत्ने। ७

गुणरत्नाकर पधारिया रे लाल,
कल्पवृक्ष चिंतामणि रे लाल। ...रत्ने। ८

गुरुराज पधार्या अम आंगणे रे लाल,
वंदन स्तवन शा शा करूं रे लाल। ...रत्ने। ९

सेवके शरण ग्रह्युं भावथी रे लाल,
आत्मकल्याण अम आपजो रे लाल।
(शाश्वता सुख आपजो रे लाल।) ...रत्ने। १०

☆☆☆

स्वर्णभानुभरते ऊग्यो रे

(राग : सीमंधरमुखथी फूलडां खरे)

उमराणा धाममां रत्नोनी वर्षा,
जन्म्या तारणहार रे।
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
उजमबा-माताना नंदन आनंदकंद,
शीलण पूनमनो चंद रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे।१
मोतीचंदभाईना लाडीला सुत अहो!
धन्य माता-कुळ-ग्राम रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

दुषम काणे अहो ! कहान पधार्या,
साधकने आव्या सुकाल रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे । २
विदेहमां जिन-समवसरणना
श्रोता सुभक्त युवराज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
भरते श्रीकुंदकुंद-मार्ग-प्रभावक
अध्यात्मसंत शिरताज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे । ३
वरस्यां कृपामृत सीमंधरमुखथी,
युवराज कीधा निहाल रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
त्रिकाल-मंगळ-द्रव्य गुरुजी,
मंगळमूर्ति महान रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे । ४
आत्मा सुमंगळ, दृगज्ञान मंगळ,
गुणगण मंगळमाण रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
स्वाध्याय मंगळ, ध्यान अति मंगळ,
लगनी मंगळ दिनरात रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे । ५
स्वानुभवमुद्रित वाणी सुमंगळ,
मंगळ मधुर रणकार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

ब्रह्म अति मंगळ, वैराग्य मंगळ,
मंगळ मंगळ सर्वांग रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे।६
ज्ञायक-आलंबन-मंत्र भणावी,
खोल्यां मंगळमय द्वार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
आतमसाक्षात्कारज्योति जगावी,
उजाळयो जिनवरमार्ग रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे।७
परमागमसारभूत स्वानुभूतिनो
युग सजर्यो उजमाण रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
द्रव्यस्वतंत्रता, ज्ञायकविशुद्धता
विश्वे गजावनहार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे।८
सारा भारतमां अमृत वरस्यां,
फाल्या अध्यातम-फाल रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
श्रुतलब्धि-महासागर ऊछल्यो,
वाणी वरसे अमीधार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे।९
नगर नगर भव्य जिनालयो ने,
बिंबोत्सव ऊजवाय रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

कहानचरणथी सुवर्णपुरनो
उज्ज्वण बन्यो इतिहास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे। १०
'भगवान छो' सिंहनादोथी गाजतुं
सुवर्णपुर तीर्थधाम रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
रत्नचिंतामणि गुरुवर मळिया,
सिद्धयां मनवांछित काज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे। ११
अनंत महिमावंत गुरुराज ने
रत्ने वधावुं भरी थाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
पावन अे संतनां पादारविंदमां
होजो निरंतर वास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे। १२

☆☆☆

आजे भरतभूमिमां....

(राग : मारा मंदिरियामां त्रिशलानंद)

आज भरतभूमिमां सोना-सूरज ऊगियो रे;
मारा अंतरिये आनंद अहो! ऊभराय,
शासन-उद्धारक गुरु जन्मदिवस छे आजनो रे;
गुरुवर-गुणमहिमाने गगने देवो गाय,
विधविध रत्नोथी वधावुं हुं गुरुराजने रे। ...आजे। १

(साखी)

उमराळामां जनमिया उजमबा-कूख-नंद;
कहान तारुं नाम छे, जग-उपकारी संत।
मात-पिता-कुण-जात सुधन्य अहो! गुरुराजनां रे;
जेने आंगणे जन्म्या परमप्रतापी कहान,
जेने पारणियेथी लगनी निज कल्याणनी रे। ...आजे। २

(साखी)

'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव';
जाग्या आतमशक्तिना भणकारा स्वयमेव।
परमप्रतापी गुरुअे अपूर्व सत्ने शोधियुं रे;
भवगत्कुंदऋषीश्वर चरण-उपासक सन्त,
अद्भुत धर्मधुरंधर धोरी भरते जागिया रे। ...आजे। ३

(साखी)

वैरागी धीरवीर ने अंतरमांही उदास;
त्याग ग्रह्यो नर्वेदथी, तजी तनडानी आश।
वंदुं सत्य-गवेषक गुणवंता गुरुराजने रे;
जेने अंतर उलस्यां आत्म तणां निधान,
अनुपम ज्ञान तणा अवतार पधार्या आंगणे रे। ...आजे। ४

(साखी)

ज्ञानभानु प्रकाशियो, झलक्यो भरत मोझार;
सागर अनुभवज्ञाननो रेलाव्यो गुरुराज।
महिमा तुज गुणनो हुं शुं कहुं मुखथी साहिबा रे;
दुःषमकाळे वरस्यो अमृतनो वरसाद,
जयजयकार जगतमां कहानगुरुनो गाजतो रे। ...आजे। ५

(साखी)

अध्यातमना राजवी, तारणतरण जहाज;
शिवमारगने साधीने कीधां आतमकाज।
तारा जन्मे तो हलाव्युं आखा हिन्दने रे;
पंचमकाले तारो अजोड छे अवतार,
सारा भरते महिमा अखंड तुज व्यापी रह्यो रे। ...आजे। ६

(साखी)

सद्दृष्टि, स्वानुभूति, परिणति मंगलकार;
सत्यपंथ प्रकाशता, वाणी अमीरसधार।
गुरुवर-वदनकमणथी चैतन्यरस वरसी रह्या रे;
जेमां छाई रह्या छे मुक्ति केरा मार्ग,
अेवी दिव्य विभूति गुरुजी अहो! अम आंगणे रे। ...आजे। ७

(साखी)

शासननायक वीरना नंदन रुडा कहान;
ऊछल्या सागर श्रुतना, गुरु-आतममोझार।
पूर्वे सीमंधरजिन-भक्त सुमंगल राजवी रे;
भरते ज्ञानी अलौकिक गुणधारी भडवीर,
शासन-संतशिरोमणि स्वर्णपुरे बिराजता रे। ...आजे। ८

(साखी)

सेवा पदपंकज तणी नित्य चहुं गुरुराज!
तारी शीतल छांयमां करीअे आतमकाज।
तारा जन्मे गगने देवदुंदुभि वागियां रे;
तारा गुणगणनो महिमा छे अपरंपार,
गुरुजी रत्नचिंतामणि शिवसुखना दातार छो रे;
तारां पुनित चरणथी अवनी आजे शोभती रे। ...आजे। ९

कहानगुरुदेव का अपार उपकार

तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है, ऐसा गुरुदेव ने युक्ति-न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट रूप से समझाया है। मार्ग की बहुत झनावट की है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्मा का शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब आपश्री के प्रताप से इस काल में सत्यरूप से बाहर आया है। गुरुदेव की श्रुत की धारा कोई अलग ही है। उन्होंने अपने को तिरने का मार्ग दिखलाया है। प्रवचन में भी कितना घोल-घोलकर निकालते हैं! आपश्री के प्रताप से पूरे भारत में बहुत जीव मोक्ष के मार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। पंचम काल में ऐसा योग मिला, वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवन में सब उपकार गुरुदेव का ही है। गुरुदेव गुण से भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमल की सेवा हृदय में बसी रहो।

— बहिनश्री चम्पाबेन

पावन-मधुर-अद्भुत अहो! गुरुवदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळया सद्भाग्यथी, नित्ये अहो! चिद्रसभर्यां।
गुरुकहान तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्या,
भव भव रहो अम आत्मने सांनिध्य आवा संतना॥

– बहिनश्री चम्पाबेन